

ॐ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः ॥



सर्वोत्कृष्ट धर्म है—वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । | सब धर्मों का अष्टरीय से पालन करते बीब निरन्तर ।
भक्ति आधोऽक्षर की अहेतुकी विवशूल्य अति मगलदायक । | किन्तु इरि-कथा-प्रीति न हो, आम व्यर्थ समी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ४ } गौराब्द ४७२, मास—वामन १४, वार—वासुदेव } संख्या १
रविवार, ३२ ज्येष्ठ, समवत् २०१५, १५ जून १९५८ }

श्रीनित्यानन्दाष्टकम्

[अ. वृन्दावनदास-ठक्कुर-विरचितम्]

शरवचन्द्र आनन्द स्फुरदमङ्ग कान्ति गजगांति हरि प्रेमोन्मत्तं धृत-परम-सर्वं स्मितमुखं ।
सदा शूर्णन्ते व्रं कर-कलित-वेत्रं कलिभिद भजे नित्यानन्दं भजन-तह-कन्दं निरवधि ॥१॥
रसानामागारं स्वजनगणा-सर्वस्वमतुलं तदीयैक-प्राणप्रतिम-वसुधा-जाह्नवी-पति ।
सदा प्रेमोन्मादं परम विदितं मन्द मनसां भजे नित्यानन्दं भजन-तह-कन्दं निरवधि ॥२॥
शचीसून्त्रेहं निलिक जगदिष्टं सुखमयं कलौ मजाजजीवोदरण-करणोदाम-करणं ।
हरेष्वर्यानाद्वा भव-जलविद्य-गर्वोऽस्ति इरि भजे नित्यानन्दं भजन-तह कन्दं-निरवधि ॥३॥
अये भ्रातनृणां केलि-कलुषिणां कि नु भविता तथा प्रायशिच्छं रचय यदनयासत-हमे ।
ब्रजन्ति त्वामित्यं सह भगवता मंत्रवति यो भजे नित्यानन्दं-भजन-तह कन्दं-निरवधि ॥४॥
यथेष्टं ये आतः ! कुरु हरि-हरि एवानमनिशं सतो वः संसाराम्भुधि-हरण-दयो मयि लगेत् ।
इदं याहु-स्फोटैरटति रटयन यः प्रतिगृहं भजे नित्यानन्दं भजन-तह कन्दं निरवधि ॥५॥
वकाश संसाराम्भोनिधि-हरण कुभोऽक्षमहो सतो अथः-सिन्धुऽति-कुमुद बन्धुं समुदितं ।
लक्ष्मेश्वरी-स्फुज्ज्वलिमिर-हर-सूर्य-प्रभमहं भजे नित्यानन्दं भजन-तह कन्दं निरवधि ॥६॥

नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि ब्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि नदयन्तं जनगण्ये ।
प्रकृष्टन्तं सन्तं सकरुण-दग्धन्तं प्रकल्पनाऽ भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥७॥
सुविश्राण्यं आतुः कर-सरसिङ्गं कोमलतरं मिथो वक्त्रालोकोच्छुलित-परमानन्द-हृदयं ।
अमन्तं मातुर्यैरहह ! मदयन्तं पुरजनाऽ भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥८॥
रसानामाधानं इसिक-वर-सदौदेशाव धनं रसागारं सारं पवित्र-तति तारं स्मरणातः ।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठति य स्तुदङ्गि-दृष्ट्वाऽङ्गं स्फुरतु नितरां तस्य हृदये ॥९॥

अनुबाद—

जिनके मनोहर मुखमण्डलकी शोभा शरत्-कालीन पूर्णचन्द्रका पराभाव करती है, जो मदमन्त्र हस्तीकी तरह मृदु-मन्थर गतिसे गमन करते हैं, जो सदा-सर्वदा कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त रहते हैं, जिनका कलेवर विशुद्ध सत्त्वमय है, जिनके मुख मण्डल पर मन्द-मन्द गुस्कान खेलती रहती है, जिनके नेत्र-युगल सदा चंचल रहते हैं, जिनके हाथोंमें वेत्र शोभित हैं और जो कलिके समस्त पाँपोंका ध्वंस करते हैं, उन श्रीकृष्ण-भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्या-नन्द प्रभुका मैं सदा भजन करता हूँ ॥१॥

जो निखिल रसके आधार है, जो भक्तजनोंके प्राणघन है, जिनकी तीनों लोकोंमें कही भी उपमा नहीं, जो प्राणोंसे भी अधिकतर प्रिय श्रीषुधा और जाह्नवादेवीके प्राणपति हैं, जो कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त रहते हैं और जो उद्धारके रूपमें दुष्टोंका दलन करते हैं, उन श्रीकृष्ण-भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सदा भजन करता हूँ ॥२॥

जो गौरचन्द्रके निरतिशय प्रिय है, जो सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करते हैं, जो परम सुखमय है, पापके भारसे दबे हुए कलियुगी जीवोंका उद्धार करने में जिनकी करुणाको कोई सीमा नहीं है, जिन्होंने हरिनामका प्रचार करके दुस्तर भव-सागरका गर्व चूर्ण-चिचूर्ण कर दिया है अर्थात् संसार-समुद्रको अनायास पार उत्तरनेके लिये अस्यन्त सहज उपाय निकाला है, उन श्रीकृष्ण भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्री नित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ ॥३॥

‘हे भ्रातः ! कलियुगके पापी जावोंकी गति क्या

होगी ? तुम कृपा करके कोई ऐसा उपाय करो कि वे लोग तुम्हारे श्रीचरणोंको प्राप्त कर सके’—इस प्रकार जो श्रीगौर भगवानके साथ कथोपकथन और युक्ति परामर्श किया करते थे, उन श्रीकृष्णभक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ ॥४॥

‘भाइयो ! तुम क्षोग निरन्तर प्रचुर मात्रामें भगवन्नाम करो, ऐसा करनेसे तुमलोगोंके भवसागर धार होनेका सारा भार मेरे ऊपर है’—ऐसा कहते-कहते जो अपनी भुजा बांधोंको ढाठा कर घर-घरमें घूमते थे, उन श्रीकृष्ण-भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ ॥५॥

‘अहो ! जो संतोके संसार-समुद्रको सुखा ढाकने में कुंभ या घडेके समान है अर्थात् जो भगवद्गुरुओं का अनायास ही उदार कर देते हैं, जो जीवोंके कल्याण समुद्रको उद्देलित करनेके लिये चन्द्रमाके रूपमें उदित हैं अर्थात् जो सम्पूर्णरूपसे जीवोंका कल्याण करते हैं, और जो दुष्टोंके पापरूप अंघकार को नष्ट करनेके लिये सूर्य-स्वरूप हैं, उन श्रीकृष्णभक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ ॥६॥

जो नाचते-नाचते, हरिनाम-संकीर्तन करते-करते, हरि-हरि उच्चारण करते-करते तथा श्रीहरिनाम-कीर्तन करनेवाले अपने भक्तोंके प्रति हाप्रिपात करते हुए भिन्न भिन्न पथों पर विचरण करते थे, एवं जो सज्जन पुरुषों (भक्तों) के प्रति सकृष्णनेत्रोंसे

देखा करते थे, उन श्रीकृष्णभक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुको मैं निरन्तर भजता हूँ ॥७॥

श्रीगौराङ्गदेवके अतिशय कोमल कर-कमलोंको धारण करके एक दूसरेका मुख-चन्द्र निहार जो कर परमा नन्दमें मग्न हो जाया करते थे एवं अहो ! जो अपने अनिवंचनीय माधूर्यसे समस्त नगरवासियोंको पागल कर चारों ओर विचरण करते थे, उन श्रीकृष्णभक्ति-रूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सदा भजन करता हूँ ॥८॥

जो भक्ति रसको प्रदान करनेवाले हैं, जो रसिक भक्तोंके सर्वस्व-धन हैं, जो निखिल रसके मूलाधार हैं । जो 'तीनों' लोकोंके सार स्वरूप हैं, जिनका स्मरण करनेसे पापियोंका उद्धार हो जाता है, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुके इस परमोत्तम और अपूर्व अष्टकका जो पाठ करेंगे, उनके हृदयमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके सुदुर्लभ चरण-कमल स्फूर्ति लाभ करें ॥९॥

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

आविर्भाव-क्षेत्र

श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी आविर्भाव भूमि— श्रीधाम मायापुरसे बीस मीलकी दूरीपर उला या बीरनगर नामक एक प्राचीन गाँव है । इसी गाँवमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव हुआ था । जिस उलाप्राममें कुछ ही दिन पहले महादेव बारुईके घरमें कर्त्ता-भजा (आउल) सम्प्रदायके आदिगुरु आबलचाँद का जन्म हुआ था, उसी गाँवमें समस्त प्रकारके अन्तिपूर्ण और विद्व मतवादोंको चूर्ण-विचूर्णकर भौतिक ज्ञानमें प्रमत्त मानव जातिको यथार्थ परमार्थके पथ पर लानेके लिये तथा मायापुरचन्द्र श्रीश्रीगौरचन्द्र द्वारा प्रवाहित विशुद्ध भक्ति-प्रवाहको एकवार फिरसे समग्र विश्वमें प्रवल वेगसे प्रवाहित करनेके लिये भक्ति पथके एक महान आचार्यके रूपमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव हुआ था ।

उनके आविर्भावके कुछ दिनोंके बादही उलानगरमें महामारीका भीषण प्रकोप हुआ । लोग बड़ी संख्यामें मरने लगे । सब लोग इस गाँवको छोड़कर अन्यत्र भाग गये । सारा गाँव जनशून्य हो गया । इस दयनीय हृश्यको देखकर हमारे नित्य सिद्ध साहित्यकार—श्रीलभक्ति विनोद ठाकुरने बहुत्ता भावामें

असिताल्लाल छन्दोंमें सर्व-प्रथम 'विजन-प्राम' नामक एक महाकाव्यकी रचना की । इस महाकाव्यका रचनाकाल १६६३ खृष्टाब्द है ।

'उला प्राम' पश्चिम-बंगके नदिया जिलाके अन्तर्गत उलाला परगनेमें पहता है । कलकत्तेसे यह स्थान १२ मील की दूरीपर है । कलकत्तेसे रानाघाट होकर पाकिस्तानको जानेवाली रेलवे लाइनके ऊपर रानाघाट स्टेशनके बाद ही बीरनगर नामक स्टेशन पहता है । इसी बीरनगरका अस्थन्त प्राचीन और सुप्रसिद्ध-नामान्तर ही 'उला गाँव' है । इस गाँवके जिस भवनमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका जन्म हुआ था, उसके खण्डहूर आज भी अतीतके गीरत्वकी साज्जी देते हैं ।

आविर्भाव-काल

सपार्षद नदिया-प्रकाश श्रीमायापुरचन्द्रने पापके बोझसे दबे हुए कलियुगी जीवोंकी भोगमयी बुद्धिके विपरीत भगवत्-सेवाका उत्कर्ष दिखलानेके लिये जिस समय इस प्रथमचमें अपनी महालमयी श्रीदार्थ लीलाको प्रकट किया था, उससे लगभग साढ़ेतीन सौ वर्ष पीछे अर्थात् ३५२ गौराब्द, १७६० शकाब्द, १८६५ सम्वत् ११४५ बहुगाव्द और १८३८ खृष्टाब्दमें २ सितम्बर, बहुगला १८ भाद्र, ब्रयोदशीके दिन मायापुरचन्द्रके

परम-प्रिय निजजन श्रीभक्तिविनोद ठाकुर आविभूत हुए थे।

निखिल कल्याण-गुण-वारिधि सर्वं शक्तिमान पुरुषोत्तम भगवान् ने इस जगत् में जिस सुविमला भक्तिका प्रचार कर अपनी महावदान्यताका—उदारताका परिचय दिया है, जिस भक्तिको उन्होंने अपनी प्राप्तिका एकमात्र पथ निर्दीरित किया है और जो विमला भक्ति श्रीश्रीगौर हरिके अप्रकट कीलामें प्रवेश कर जानेके पश्चात् कालवर्षके प्रमावसे लुप्त-प्राय हो गयी थी, उस भक्ति धर्मको इस जगत् में पुनः प्रकाश करनेके लिये पुरुषोत्तम भगवान् ने अपने आश्रय-विषय—सेवक-भगवान् के रूपमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुर को इस जगत् में भेजा था।

स्वरूप और आविभाविका कारण

जब वे आये तो लोगोंने बाध्य हृषिसे देखा कि एक पंचोपासकके घरमें एक प्रपंचातीत वासक आये हैं। किन्तु वास्तवमें वहाँ तो उस कुलको केवल आश्रय कर साक्षात् कृष्णकी शक्ति कृष्ण-भक्तिका पुनः प्रकाश करनेके लिये स्वयं अवतीर्ण हुई थी। क्योंकि कृष्ण-शक्तिके बिना कोई साधारण जीव कृष्ण भक्तिका प्रवर्त्तन करनेमें समर्थ नहीं है।

अधन्य देशको धन्य करनेके लिये, अपवित्र भूमि को पवित्र करनेके लिये, अवश्य कलिको निरवश्य सत्य-पुण्यके रूपमें बदल देनेके लिये तथा जगत् की अक-कल्याण-राशिको दूर कर नित्य कल्याणका स्रोत बहानेके लिये गौड शशधर श्रीचैतन्य-देव और उनकी पार्षद-मण्डली गौड प्रदेशमें अवतीर्ण हुई थी। जिस प्रकार श्रीचैतन्यदेवके आविभाविकसे पहले देशमें धर्मकी वड़ी ही दुरवस्था थी, उससे कहीं अधिक दुरवस्था श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके आविभाविकसे पूर्व हो गयी थी। उस समय बड़ालमें योगीपाल और भोगीपालके गान तथा मंगलचरणही विषहरिकी पूजा ही धार्मिक कृत्य माने जाने लगे थे। श्रीमन्महाप्रभुके सम्प्रदायके नाम पर बहुतसे अपसम्प्रदाय यथेच्छा-चारिता और कुत्सित तथ्योंका आचार और प्रचार कर देशको सर्वनाशके पथपर अपसर कर रहे थे।

भूत-सिद्धि, वशीकरण, पंचपक्षीसाधन, पञ्चदेवावाहन आदि तामसी और अशास्त्रीय पूजाओंका सर्वत्र ही बोलबाला था। लोग वैष्णव धर्मकी सिलिङ्गयाँ उदाया करते थे। भगवद्-भक्ति करना मूर्खों और अनपढ़ों का काम समझा जाता था। ठीक ऐसे समयमें इस महापुरुषका आविभाव और उनके द्वारा 'कीर्तनीया सदा हरिः'—महाप्रभुकी श्रीसुखकी बाणीके दिव्यालोकसे सम्पूर्ण देशका उद्भासित किया जाना तथा देश-विदेशमें सर्वत्र महाप्रभुकी चर्यार्थ वाणीका प्रचार और वैष्णव धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा—यह सब कार्य करुणावरुणालय भगवान् की अमन्दोदयदयाका ही परिचय है।

श्रीनिवासाचार्यके बाद एकमात्र गौडीय वैष्णवाचार्य

श्रीमन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभुने गौडीय वैष्णव सम्प्रदायकी बागडोर संभाली थी। इन तीनों महापुरुषोंने प्रपंचमें अवतीर्ण होकर अन्याभिलाषी, कर्मी और ज्ञानियोंके मरु-हृदयमें भी भक्तिरसामृत-सिद्धुके भवण और कीर्तनरूपी जलधाराका संचार किया था। इसके बाद बहुत दिनों तक अवण-कीर्तनके अभावरूप आनावृष्टि अथवा अल्पवृष्टिके कारण जीवोंका हृदय पुनः मरु बन गया। प्रेमजलता क्रमशः सुरक्षाने लगी। ऐसे दुर्दिनमें सत्-चित्-आनन्दके घनीभूत मृत्ति भगवान् ने अपने सकिंचदानन्द सेवकको प्रपंचमें अवतीर्ण कराकर उनके द्वारा उस सुरक्षायी हुई प्रेम वैलिको पुनः पुष्पित और पल्लवित करवाना उनकी अहैतुकी दयाका श्रेष्ठ निदर्शन है।

नित्य-जीवनका अनुसंधान करना तो दूर रहे, कर्माशक जीव शान्ति एवं सुख पानेकी आशासे केवलाद्वैतवादरूप धोर तमिस्तकी और बढ़ते हैं। यदि उन्हें उस और अप्रसर होनेमें कोई बाधा देने वाला न हो तो वे भिन्न-भिन्न असत् मतवादोंकी चपेटमें आ पड़ते हैं। क्लेश-संतप्त जीव खगत, सजा-

तीथ और विजातीय भेद-रहित मतवादियोंके कोलाहलको सुनकर जब काल्पनिक शान्ति—कैवल्यके अनुसंधानमें तत्परतासे लग पड़ता है, तब भजन-परायण निष्कपट भक्त केवलाभेदवादियोंके भेद-कोलाहलकी असारताको बजागंभीर स्वरसे दिखलाकर कोमल-अद्वीजीवोंकी रक्षा करता है। सचिच्चदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर ऐसे ही निष्कपट परम भक्तोंमें एक महान पुरुष हैं।

प्रचार

भोग और त्यागकी कण्टकपूर्ण भूमिकामें जीव को सर्वत्र दुःख ही दुःख प्राप्त होता है। उनके जीण विचार आत्मनितक कल्याणका विधान करनेमें असमर्थ हैं। अतः आश्रयानुगत भक्तिका सुहृद् विचार ही हमारे लिये सर्वदा अवलम्बनीय है। कर्म, ह्रान, योग और तपस्या आदिको कल्याणका मार्ग समझ कर जो भ्रान्त पथिक विषयमें गमन करते हैं, उनके लिये एक सच्चे पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता होती है। श्रीसच्चदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर ऐसे-ऐसे पथ-प्रदर्शकोंमें अप्रणीत हैं। इन्हाने कर्म, ह्रान, योग और तपस्या आदि मार्गोंकी हेयता प्रमाणित कर भक्ति मार्गका ही अभिधेयत्व तथा कृष्ण-प्रेमका ही एकमात्र प्रयोजनत्व प्रतिपादन किया है।

श्रीगौर सुन्दर और उनके भक्तजनोंने संसारमें जिस महान् कृपाका वितरण किया है, उस कृपाकी सर्व-अष्टुता प्रतिपादन करने के लिये श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने आचार और प्रचारके द्वारा जिस असीम और अद्वेतुकी करुणाका परिचय दिया है, वह उनकी तिरोभाव तिथिके अवसर पर श्रवण और कीर्तनका विषय है। शास्त्रोंका कथन है—कुसंज्ञको छोड़कर सत्सङ्गमें हरिकथाका श्रवण कीर्तन और स्मरण करनेसे समस्त प्रकारके अमङ्गलोंसे छुटकारा मिल सकता है। किन्तु इसमें एक शर्त है। वह यह कि यदि उक्त श्रवण, कीर्तन और स्मरण—ये तीनों साधन यदि भगवान् और उनके निजजनोंके आनुगत्यमें किये जाय, तभी वे भक्तिके अङ्ग हैं तथा वे तभी नित्य-कल्याण रूप सुन्दर फल प्रसव करनेमें समर्थ होते हैं, नहीं तो भगवत्कृपासे वंचित होना पड़ता है। जो भगवान्नरमें दूबते हुए हमलोगोंका उद्धार करनेके लिये सतत प्रयत्नशील हैं, वे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वविद् अर्थात् बन्ध-मोक्षविद् श्रीभक्तिविनोद ठाकुर हमारे जीवन पथके भ्राताराके रूपमें हमारा पथ-प्रदर्शन करें।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी सार-शिक्षाएँ

(१) आस्नाय-बाक्य अर्थात् गुरु-परम्परागत वेद वाणियाँ ही मुख्य प्रमाण हैं। उससे निम्नलिखित नीचिद्धान्त सिद्ध होते हैं।

- (२) कृष्ण-स्वरूप हरि ही जगतमें परम तत्त्व है।
- (३) वे सर्वशक्तिमान हैं।
- (४) वे अखिल रसामृत-सिन्धु हैं।
- (५) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं।

(६) तटस्थ धर्मवशात्: मुक्त जीव प्रकृतिसे मुक्त होते हैं।

(७) चित्-अचित् अखिल जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है।

(८) शुद्ध-भक्ति ही एकमात्र साधन है।

(९) शुद्ध कृष्ण प्रीति ही एकमात्र साध्य वस्तु है।

—दशमूल शिक्षा

वैष्णव-सिद्धान्त-माला

नवप्रमेय-सिद्धान्त

पहला अध्याय

प्रश्न—परमाराध्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने हमें क्या आङ्गा दी है ?

उत्तर—उनकी आङ्गा यह है कि श्रीमन्मध्वाचार्यने हम लोगोंको गुरु-परम्परासे प्राप्त हुए जिन नौ प्रकारके तत्त्वोंका उपदेश दिया है—हमें उनका सूचयत्नके साथ पालन करना चाहिये ।

प्रश्न—गुरु-परम्परा किसे कहते हैं ?

उत्तर—समस्त गुरुओंके आदि गुरु हैं—भगवान्। उन्होंने कृपा करके आदि कवि श्रीब्रह्माजीको तत्त्वों-उपदेश किया । श्रीब्रह्मासे जीनारद, नारदसे श्रीन्यास और क्रमशः व्याससे श्रीमध्वाचार्यको उस तत्त्वकी शिक्षा मिली थी । इस प्रकार गुरु-शिष्यके क्रमानुसार जो उपदेश प्राप्त होता है उसीका नाम है—गुरु-परम्परा प्राप्त उपदेश ।

प्रश्न—श्रीमध्वाचार्यने जिन नौ तत्त्वोंका उपदेश दिया है, वे क्या हैं ?

उत्तर—ये नव तत्व इस प्रकार हैं—

- (१) भगवान् ही एकमात्र परम तत्व है ।
- (२) वे ही निखिल ब्रह्मोंके परम पतिपादा तत्व हैं ।
- (३) विश्व—सत्य है ।
- (४) भेद—सत्य है ।

(५) जीव—भगवान्के नित्यदास हैं ।

(६) जीवोंमें अवस्था भेदसे तारतम्य है ।

(७) भगवत्प्राप्तिका नाम ही मोक्ष है ।

(८) भगवान्का भजन—भक्ति ही मोक्ष प्राप्तिका कारण है ।

(९) 'प्रत्यक्ष', 'अनुमान' और 'शब्द'—ये तीन प्रमाण हैं ।

दूसरा अध्याय

भगवान् हो एकमात्र परमतत्व हैं

प्र०—भगवान् कौन है ?

उ०—जो अपनी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा जीव और जड़की सृष्टि करके उनमें ईश्वर-स्वरूपसे अनुप्रविष्ट हैं, तथा जो ब्रह्मरूपमें उन सबसे ऊपर चिन्तासे अतीत तत्त्व हैं अथवा पराशक्ति द्वारा प्रकाशित सचिवदानन्द स्वरूपमें जीवोंकी भक्तिवृत्तिके विषयी-भूत हैं—उनका नाम भगवान् है ।

प्र०—भगवान्की शक्ति कैसी होती है ?

उ०—हम लोग भगवान्की शक्तिका यथार्थ बर्णन नहीं कर सकते । क्योंकि भगवान्की शक्तिकी कोई

सीमा नहीं है; किन्तु—हम लोग ससीम हैं। इसीलिए उनकी शक्तिको पराशक्ति कहा गया है । हमारे लिए जो अत्यन्त असम्भव है, भगवान्की शक्तिके लिए वह अनायास ही संभव है । उस अघटन-घटन-पटीयसी शक्तिके द्वारा समस्त विपरीत घर्म भी एक ही साथ एक समयमें प्रकाशित होते हैं ।

प्र०—क्या भगवान् शक्तिके अधीन हैं ?

उ०—भगवान् एक अलग वस्तु हैं तथा शक्ति उनसे अलग एक दूसरी वस्तु हैं—ऐसी बात नहीं है । जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अग्निसे अभिन्न होती है

उसी प्रकार भगवान् की शक्ति भगवान् से अभिन्न होती है।

प्र०—यदि भगवान् ही एकमात्र परम-तत्त्व हैं, तो श्रीमन्महाप्रभुने कृष्ण-भक्तिका उपदेश क्यों दिया है?

उ०—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री (रूप), ज्ञान और वैराग्य ये छः भगवान् के नित्य गुण हैं। इनमें से किसी गुणके अधिक प्रकाश और किसी गुणके अल्प प्रकाशके अनुसार भगवत्-स्वरूपका उद्यमेद होता है। जहाँ पर जिस स्वरूपमें ऐश्वर्य भाव प्रबल रूपसे प्रकाशित होता है—उस स्वरूपको 'परठयोमनाथ नारायण' कहा जाता है और जिस स्वरूपमें माधुर्य भाव प्रथान होता है, उस स्वरूपको 'वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण' कहा जाता है। अतएव श्रीकृष्ण ही भगवत्-तत्त्वके सर्वोत्तम-प्रकाश हैं।

प्र०—भगवान् के स्वरूप किसने हैं?

उ०—केवल एक ही प्रकारका—चिन्मय, परम सुन्दर, परमानन्दमय, सर्वार्थक, लीलामय और विशुद्ध प्रेमगम्य होता है। जीवोंके स्वभाव-भेदसे उस एक ही नित्य स्वरूपके अनन्त प्रकारके उद्य (प्रकाश) भेद हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकृतिवाले जीव उन उद्य भेदोंको पृथक्-पृथक् एक-एक स्वरूप मानते हैं। श्रीकृष्ण स्वरूप ही नित्यानन्द स्वरूप है।

प्र०—कृष्ण लीला क्या है?

उ०—चिन्त् जगत् के परम रमणीय विभागका नाम—श्रीवृन्दावन है; वहाँ पर स्तिष्ठदानन्द श्रीकृष्ण नित्यलीलाके सम्पादकरूप श्रीश्रीराधाकृष्ण—युगल स्वरूपमें नित्य विराजमान हैं। जीवका आनन्द-स्वरूप प्रकाशित होने पर वह अप्राकृत वृन्दावनमें परमानन्द स्वरूपिणी श्रीमती राधाकी सहचरीके रूपमें नित्यकृष्ण लीलामें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करता है। उस लीलामें भय और मृत्युका कोई अधिकार नहीं होता। अजस्त्र चिदानन्द ही उस लीला का एकमात्र उपकरण है।

प्र०—कृष्ण-लीलाकी प्राप्तिमें क्या-क्या बाधाएँ हैं?

उ०—दो बाधाएँ हैं—जड़बुद्धि और जड़चिन्ता-तीत निर्विशेषबुद्धि।

प्र०—जड़-बुद्धिका तात्पर्य क्या है?

उ०—जड़ीय देश, जड़ीय काल, जड़ीय द्रव्य, जड़ीय आशा, जड़ीय चिन्ता और जड़ीय कर्म—ये सब अपने-अपने प्रभावसे जिस बुद्धिको संकीर्ण किये होते हैं, उसे जड़ बुद्धि कहते हैं। जड़ बुद्धिसे अप्राकृत वृन्दावन धाम—जड़-भूमि जैसा दिखलाई पढ़ते हैं; काल—भूत, भविष्य और वर्तमान तीन यामोंमें विभक्त दीखता है, नश्वर द्रव्य ही एकमात्र द्रव्य प्रतीत होते हैं। जड़-बुद्धि स्वर्ग आदि अनित्य सुखों की ही आशा करती है, वह जड़ चिन्ताके अतिरिक्त कोई दूसरी (अप्राकृत) चिन्ता नहीं कर सकती; सम्यता, नीति, शिल्प, विज्ञान और सांसारिक द्वजति आदि नश्वर कर्मोंकी ही 'कर्त्तव्य' मानती है।

प्र०—निर्विशेष-बुद्धि किसे कहते हैं?

उ०—जिस धर्मके द्वारा जड़ जगत् के सारे द्रव्य परस्पर पृथक्-पृथक् हैं—उस धर्मको 'विशेष' कहते हैं। जड़ चिन्ताको त्याग करनेके साथ-साथ जो उक्त विशेषका भी परित्याग करते हैं, उनकी बुद्धि निर्विशेष हो पड़ती है। ऐसे लोग वस्तु-भेद नहीं देख पाते हैं, अन्ततोगत्वा वे अपनेको निर्वाण प्राप्त अथवा ब्रह्ममें लय प्राप्त हुआ समझते हैं। उस अवस्थामें आनन्द नहीं होता। चिन्त-सुखका अभाव होनेसे प्रेमका भी लोप हो जाता है। कृष्ण-लीला जड़तीत होने पर भी निर्विशेष नहीं—बल्कि सविशेष होती है।

प्र०—यदि कृष्णलीला जड़से आतीत है, तब द्वापर के अन्तमें वह कैसे दिखलाई पड़ी थी?

उ०—कृष्णलीला जड़ इन्द्रियोंसे अगोचर है। किन्तु श्रीकृष्णकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे जड़तीत लीला जड़ जगत्में प्रकट होती है। जड़ जगत्में प्रकट होनेपर भी वह जड़मिश्र अथवा जड़ धर्मके अन्तर्गत नहीं होती। प्रकट और अप्रकट—दोनों ही अवस्थाओं में कृष्णलीला सर्वदा विशुद्ध चिन्मय होती है। श्रीकृष्णलीला—शुद्ध वैकुंठगत श्रीवृन्दावनकी लीला

है। ऐसा होने पर भी कृष्णकी अचिन्त्य शक्ति और अपार करुणासे वह प्रपंचमें अथवा जीवोंके विशुद्ध हृदयमें आविर्भूत होती है। किन्तु संसारमें प्रकटित होने पर जड़ बुद्धिवाले मनुष्य उस पूर्ण चिन्मयी कृष्णलीलाका यथार्थ रूपमें दर्शन नहीं कर पाते, बलिह उसे एक जड़ीय व्यापार समझ कर तर्क और युक्तिके आधार पर समझनेका प्रयत्न करते हैं। फल यह होता है कि वे अवित होते हैं तथा उसमें अनेकों दोष देखते हैं। जो व्यक्ति जगाई-मधाईकी तरह जड़-बुद्धि से छुटकारा पा लेते हैं, वे उस तत्त्वको यथार्थरूपमें—सर्वथा निर्दोष देखकर उसमें अनुरक्त हो पड़ते हैं।

श्रीकृष्णतत्त्वको समझे बिना रसकी प्राप्ति नहीं होती।

प्र०—श्रीकृष्ण तत्त्वका उपदेश तो एकमात्र वैष्णवधर्ममें ही पाया जाता है, फिर दूसरे धर्मवालोंकी गति क्या होगी?

उ०—दूसरे धर्मोंमें जो ईश्वर, परमात्मा और ब्रह्मकी उपासनाएँ होती हैं, वे सब कृष्ण तत्त्वको उद्देश्य करती हैं। जीव क्रमशः उन्नति करते-करते अत्में कृष्णभक्ति प्राप्त करता है। खण्डवर्म-समूह सम्पूर्णताको प्राप्त होनेपर अंतमें श्रीकृष्ण भक्ति ही पड़ते हैं। श्रीकृष्णतत्त्वमें पारगत बुद्धि ही जीवका परमज्ञान है।

तीसरा अध्याय

वे अखिल वेद-वेद्य हैं

प्र०—भगवत् तत्त्व कैसे जाना जा सकता है?

उ०—जीवके स्वतःसिद्ध ज्ञानके द्वारा जाना जा सकता है।

प्र०—स्वतःसिद्ध ज्ञान किसे कहते हैं?

उ०—ज्ञान दो प्रकारका होता है—स्वतःसिद्ध ज्ञान और इन्द्रिय परतंत्र ज्ञान अर्थात् इन्द्रियोंद्वारा अनुभूत ज्ञान। स्वतःसिद्ध ज्ञान-विशुद्ध चैतन्य स्वरूप जीवका सत्त्वागत तत्त्व है, जो समस्त चिद्-वस्तुओंकी तरह नित्य होता है; उसीको वेद अथवा आम्नाय कहते हैं। बद्ध जीवके साथ वही सिद्ध-ज्ञान अर्थात् वेद-शूक्, साम, यजुः और अथर्वके रूपमें आविर्भूत हुआ है। इन्हींको स्वतःसिद्ध ज्ञान कहते हैं। साधारण लोग अपनी इन्द्रियोंकी सहायतासे जो भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान संप्रदा करते हैं, उसे 'इन्द्रिय-परतंत्र ज्ञान' कहते हैं।

प्र०—इन्द्रिय-परतंत्र ज्ञानसे भगवत् तत्त्वको जाना जा सकता है या नहीं?

उ०—नहीं। भगवान् समस्त जड़-निद्रियोंसे अतीत होते हैं। इसीलिए उनको अधोक्षज कहा जाता है।

इन्द्रियाँ एवं इन्द्रिय-पुष्ट मनोगत युक्तियाँ भगवत्-तत्त्वसे अत्यन्त दूर रहती हैं।

प्र०—भगवान् यदि स्वतःसिद्ध ज्ञानसे ही पाये जाते हैं, तब तो हमारे अन्दर जो स्वतःसिद्ध ज्ञान है उसीसे हमें भगवत्-प्राप्ति हो जायगी। फिर वेद-शास्त्र अध्ययन करनेकी आवश्यकता ही क्या है?

उ०—स्वतःसिद्ध ज्ञानरूप वेद समस्त जीवोंकी शुद्ध-सत्त्वमें वर्तमान है—यह ठीक है; किन्तु बद्ध सत्त्वके तारतम्यानुसार वह वेद किसी के अन्दर स्वयं प्रकाशित हैं और किसी-किसीके अन्दर आच्छादित रूपमें वर्तमान हैं। स्वतःसिद्ध ज्ञानको प्रकाशित करनेके लिये लिपिबद्ध वेद समूह अवतीर्ण हुए हैं।

प्र०—सुना है—भगवान्, भक्तिप्राप्ति हैं; यदि यह ठीक है, तो उनको ज्ञान-प्राप्ति कैसे कह सकते हैं?

उ०—स्वतःसिद्ध ज्ञानका नाम ही भक्ति है—भक्ति और स्वतःसिद्ध ज्ञान पृथक् नहीं हैं। पर तत्त्वके सम्बेदन (अनुभव) को कोई 'ज्ञान' कहते हैं, कोई 'भक्ति' कहते हैं।

प्र०—तब भक्ति शास्त्रोंमें ज्ञानको इतना हेय क्यों माना गया है ?

उ०—भक्तिशास्त्रोंमें स्वतःसिद्ध ज्ञानको अत्यधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि स्वतःसिद्ध ज्ञानके अतिरिक्त जीवके कल्याणका कोई दूसरा उपाय नहीं है। केवल इन्द्रिय परतन्त्र ज्ञान और निर्विशेष ज्ञानसे जीवका यथार्थ श्रेष्ठः नहीं होता। इसलिये इन दोनों का तिरस्कार लक्ष्य किया जाता है।

प्र०—वेदादि निखिल शास्त्रोंमें कर्म, ज्ञान और

भक्ति—इन तीनोंका उल्लेख है। इनमेंसे किसके द्वारा भगवत् तत्त्व जाना जाता है ?

उ०—सम्पूर्ण वेद-वाणियोंका समन्वय करने पर यह स्पष्टरूपमें दिखलाई पड़ेगा कि भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ भी जानने योग्य नहीं है। वैदिक कर्म-समूह भी अंतमें भगवान्को ही लक्ष्य करते हैं। ज्ञान भी परिशुद्ध अवस्थामें विषय और निर्विषय—उभयात्मक द्वन्द्व को छोड़कर अंतमें भगवान्‌को ही लक्ष्य करता है। भक्ति स्वभावतः भगवान्‌का अनुशोलन करती है। अतएव भगवान् ही अखिल वेद-वेद्य हैं।

चौथा अध्याय

विश्व—सत्य है

प्र०—कोई-कोई कहते हैं—जगत्—मिथ्या है और केवल माया-निमित्त है। इसमें यथार्थ बात क्या है ?

उ०—यह जगत् सत्य है—किन्तु नश्वर है। सत्य और नित्य, इन दोनों विशेषणोंके अर्थ अलग-अलग हैं; जगत् नित्य नहीं है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे वह कभी नष्ट हो सकता है। जगत् वास्तवमें है—मिथ्या नहीं है। शास्त्रमें कहीं-कहीं जगत्को मिथ्या कहा गया है, किन्तु वहाँ पर ‘मिथ्या’ शब्दका तात्पर्य ‘नश्वर’ से है।

प्र०—माया क्या है ?

उ०—भगवान्की एकमात्र पराशक्तिके अनन्त प्रकारके विक्रमोंमें से हमारे निकट तीन विक्रमोंका परिचय पाया जाता है। वे तीन विक्रम हैं—(१) चिदू विक्रम, (२) जीव-विक्रम, और (३) माया विक्रम। चिदू विक्रमसे भगवत् तत्त्वका प्रकाश और उसकी स्फूर्ति होती है। जीव-विक्रमसे अगुचैतन्य स्वरूप अनन्त जीव निकले हैं और माया-विक्रमसे समस्त जड़ जगत् प्रादुर्भूत हुआ है। माया-विक्रमसे जो कुछ उत्पन्न होता है, नश्वर होता है। किन्तु जब पैदा हुआ है तब वह सब कुछ सत्य है।

पाँचवाँ अध्याय

भेद—सत्य है

प्र०—जीव और भगवान्, जब दोनों ही चैतन्य-पद वाच्य हैं, तब उनका भेद क्या काल्पनिक है ?

उ०—नहीं। भगवान् विमु-चैतन्य हैं और जीव-अगु-चैतन्य है; उनका परस्पर जो भेद है, वह काल्पनिक नहीं—वास्तविक है। भगवान् अपनी माया शक्तिके ईरवर हैं, जीव मायाके अधीन हैं।

प्र०—भेद कितने प्रकार हैं ?

उ०—दो प्रकारके—व्यवहारिक और तात्त्विक।

प्र०—व्यवहारिक भेद कैसा होता है ?

उ०—घट और पट में व्यवहारिक भेद है। परन्तु दोनोंका कारण मिट्टी है; इस अवस्थामें दोनोंमें भेद नहीं है। इस भेदका नाम व्यवहारिक भेद है।

प्र०—तात्त्विक भेद किसे कहते हैं ?

उ०—जब दो पदार्थोंमें परस्पर कार्य और कारण

दोनों ही अवस्थाओंमें भेद होता है, तब उस भेदको तात्त्विक भेद कहते हैं।

प्र०—जीव और ईश्वरका भेद व्यवहारिक होता है अथवा तात्त्विक ?

उ०—तात्त्विक ।

प्र०—कैसे ?

उ०—जीव किसी भी अवस्थामें भगवान् नहीं हो सकता है।

प्र०—तब 'तत्त्वमसि' आदि महाबाक्योंका अर्थ क्या होगा ?

उ०—इसके द्वारा श्वेतकेतुको उपदेश दिया गया है कि तुम जीव हो, तुम जड़ जातीय वस्तु नहीं—बल्कि चैतन्य जातीय वस्तु हो। उपरोक्त 'तत्त्वमसि' से जीवको विभु चैतन्य (ईश्वर) मानना भूल है।

प्र०—तो जीव और ब्रह्म सम्बन्धी अभेदसूचक वाक्योंका व्यवहार क्या अनुचित है ?

उ०—जीवकी हाइसे विचार करनेपर भेद नित्य है, किन्तु ब्रह्मकी हाइसे अभेद नित्य है। अतएव भेद और अभेद दोनों एक ही समय नित्य और सत्य हैं।

प्र०—इस प्रकारका परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त कैसे माना जा सकता है ?

उ०—भगवान्की अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे समस्त विरुद्ध तत्त्वोंका सामंजस्य संभव होता है। अल्प बुद्धिवाले जीव ऐसा होना असंभव मानते हैं।

प्र०—फिर अभेदवादका तिरस्कार क्यों सुना जाता है ?

उ०—अभेदवादी केवल अभेदको ही नित्य मानते हैं—भेदको वे अनित्य मानते हैं। मध्वाचार्यने भेदको नित्य प्रमाणित किया है। अतः अचिन्त्यभेद-भेदमें कोई दोष नहीं है, दोष है केवल-अभेदवादी अथवा केवल-अभेदवादीमें। क्योंकि इनमेंसे एक भेदवादका पक्ष लेकर अभेदको अस्वीकार करता है और दूसरा अभेदवादका पक्ष लेकर भेदको नित्य नहीं मानता।

प्र०—केवल अभेदवाद किसका नित्य है ?

उ०—निविशेषवादी ही केवल-अभेद मानते हैं।

सविशेषवादी केवल-अभेदको स्वीकार नहीं करते।

प्र०—सविशेषवाद किसका नित्य है ?

उ०—सविशेषवाद—समस्त वैष्णव सम्प्रदायोंका नित्य है।

प्र०—वैष्णव-सम्प्रदाय कितने हैं ?

उ०—चार हैं। द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत।

प्र०—इनके मतोंमें परस्पर क्या भेद है ?

उ०—इनमें कोई वास्तव भेद नहीं है। ये सभी सविशेषवादी हैं—केवल-अभेदवादको स्वीकार नहीं करते। ये सभी भगवत् परायण हैं तथा भगवत् शक्ति स्वीकार करते हैं। द्वैतवादमें भेदकी नित्यता दिखलायी गयी है। इनके मतसे केवल-अद्वैतवाद नितांत अन्धमत है। यह मत मध्वाचार्यका है। विशिष्टाद्वैतवादीका कहना है—विशेष्य वस्तु विशेषणसे युक्त है, अतएव वे केवलाद्वैत नहीं हैं। यह मत रामानुजाचार्यका है। द्वैताद्वैतमतने केवलाद्वैतवादका अत्यधिक स्पष्ट रूपमें खण्डन किया है। यह मत निम्बादित्य आचार्यका है। शुद्धाद्वैत मतने भी केवलाद्वैतमतका तिरस्कार करके तत्त्ववस्तुको शुद्ध विशेषणसे युक्त बतलाकर अपने मतको प्रामाण्य ठहराया है। भलीभाँति विचार करने पर उक्त चारों मतोंमें कोई भेद नहीं दिख पड़ता है।

प्र०—तथ श्रीओमन्महाप्रभुने केवल मध्वमतको ही क्यों प्रदण किया ?

उ०—मध्वमतका विशेष गुण यह है कि इसमें केवल अद्वैतवादरूप भ्रमका सबसे अधिक स्पष्ट खण्डन है। इस मतका आश्रय प्रदण करनेसे अभेदवादरूप पीड़ा बहुत ही दूर रहती है। दुर्बल मनुष्योंके निश्चित मंगलके लिये ही श्रीओमन्महाप्रभुने इस मतको प्रदण किया था। किन्तु इससे अन्य तीनों-मतोंको किसी प्रकारसे लघु अथवा हेतु नहीं समझना चाहिए। सविशेषवाद जिस किसी भी मतमें, चाहे किसी भी रूपमें क्यों न पाया जाय, इससे जीवका नित्य-कल्याण अवश्य ही साधित होता है।

(क्रमशः)

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भवित्विनोद ठाकुर

मुनियोंका मतिभ्रम

[दा० राधाकृष्णन द्वारा सम्पादित चैप्रेजी गीता-भाष्यकी समालोचना]

श्रीमद्भागवतके प्रथम इलोकमें ही परम सत्य तत्त्व-बस्तुका निरपेक्ष निरूपण हुआ है—

जन्मायस्य यतोऽन्यादितरतत्त्वार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुख्यान्ति यत् सूख्यः ।
तेजोवारिसूक्ष्मां यथाविनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽसूखा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥
(श्रीमद्भा० १।१।१)

श्रीवेदव्यासने वेदोंका विभाग किया, पुराणोंको प्रकाशित किया, वेदान्त और महाभारत जैसे ग्रन्थोंकी रचना की; परन्तु फिर भी उनको शान्ति न मिली तो वे बड़े चित्त हुए। देवर्षि नारदजीकी प्रेरणासे जब उन्होंने समाधिस्थ होकर परम सत्य बस्तुके निर्मल-तत्त्वका दर्शन किया तब कहीं उन्हें शान्ति मिली थी। श्रीमद्भागवत उसी समाधिलक्ष्य परम सत्य तत्त्वबस्तु-की अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। देवर्षि नारदकी प्रेरणासे पुरुषोत्तम भगवान्के अप्राकृत तत्त्वका एवं उनके नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर-वैशिष्ठ्य आदिका प्रकाश करनेके लिये ही व्यास देवने 'श्रीमद्भा॒गवत' रूप अमल पुराणकी रचना की है।

श्री व्यासदेव बद्रीकाश्रमके निकट शम्याप्राप्त नामक स्थानमें समाधि अवस्थामें भगवान् पुरुषोत्तम-को और उनके पीछे लिङ्गतमावसे स्थित उनकी आश्रिता हैवी मायाको देखा। उन्होंने जीवोंकी सम्मोहन अवस्था और भगवान्की मायातीत अवस्थाको भी देखा। इस प्रकार अप्राकृत अनुभूति सम्पन्न होकर उन्होंने परम तत्त्वको 'स्वराट्' कहा है। अर्थात् परम पुरुष भगवान्को सम्पूर्ण स्वाधीन घोषित किया है। स्वाधीन कहनेका तात्पर्य यह है कि परम पुरुषके ऊपर दूसरा कोई नहीं है अथवा उनके समान भी कोई नहीं है। मायिक ब्रह्मारणमें ब्रह्माको सबसे अधेर माना

जाता है। किन्तु ब्रह्मा भी—जो आदि कवि है, उस स्वराट् पुरुषके आधीन तत्त्व हैं; क्योंकि स्वराट् पुरुषने ही ब्रह्माको सुष्ठिके प्ररंभमें वेदान्त-ज्ञान प्रदान किया था। उस स्वराट् पुरुषके विषयमें जब बड़े-बड़े देवता और मुनि भी मोहित हो जाते हैं, तब दूसरोंकी बात ही क्या है? 'धीमहि'—शब्दका तात्पर्य यह है कि जिन लोगोंने गायत्री मंत्रकी सिद्धि प्राप्त की है, केवल वे ही स्वराट्-पुरुषको तत्त्वतः समझ सकते हैं। गायत्री मंत्रका जप कौन कर सकता है? रजस्तमो गुणके आधीन व्यक्तियोंको गायत्रीमंत्रकी सिद्धि नहीं हो सकती। अथवा ये लोग कभी भी गायत्री-जपका अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते। सत्त्वगुणमें प्रतिष्ठित ब्रह्माण-वृत्तिसे युक्त व्यक्ति ही गायत्रीके अधिकारी हैं। ऐसे अधिकारी व्यक्ति उस मन्त्रका जप करते र परम ब्रह्मकी उपलक्ष्य करने पर परमपरात्पर पुरुषके दर्शनोंके योग्य होते हैं। यह योग्यता प्राप्त होनेपर ही मायातीत नाम, धाम और परिकर-वैशिष्ठ्यके साथ वैकुण्ठाविषयति अधोजन नारायणका दर्शन होता है। पुनः उस अधोजन बस्तुकी अहेतुकी एवं अप्राकृत सेवासे अधिरूप भाव प्राप्त होनेपर भगवान् वासुदेव का दर्शन होता है। प्राकृत मनीषिवृन्द आरोह पथ (अपने जड़ीय प्रयत्नों) द्वारा भगवत्तत्वका दर्शन करनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु उनकी सारी चेष्टाएँ ठीक जैसे ही व्यर्थ हो जाती हैं, जैसे जलको मथ कर दी और बालूकी धानीसे तेज वानेकी आशासे किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ होजाता है। वे किसी दिन-भी भगवान्का दर्शन नहीं कर सकते हैं। बल्कि भगवान्का दर्शन पानेमें असमर्थ होकर भगवान्को मनुष्य और मनुष्यको भगवान् मान कर अधोगतिको प्राप्त होते हैं। इसके सिवा कोई-कोई मायातीत भगवन्

को चिन्मात्र उपज्ञायिकर मायिक वैशिष्ट्यके विपरीत केवल निर्विशेष ब्रह्म मानने जागते हैं ।

किन्तु श्रीमद्भागवत् के उपरोक्त श्लोकमें इस निर्विशेष भावनाका खण्डन कर परम सत्य वस्तुके व्यक्तित्वकी ही स्थापना की गयी है वे अप्राकृत व्यक्तित्व—भगवान् ऐसे शार्क सम्पन्न हैं, कि वे ब्रह्माको भी ज्ञान देते हैं । ब्रह्माने उनसे ही वेद-ज्ञान प्राप्त कर भौतिक जगत् की सृष्टि की है । अतः यह सिद्ध होता है कि मायिक सृष्टि होनेके पहले भी वेद-ज्ञान वर्तमान था । इसलिये उसे अपीक्षये कहा जाता है । इस अप्राकृत ज्ञानका नामात्मर ही सम्बिद् तत्त्व है । विद्यु पुराणमें सम्बिद्, सान्धिनी और ह्रादिनी तत्त्वका विशद वर्णन है । ये तीनों तत्त्व जिस शक्तिसे प्रकट होते हैं, उसका नाम चिन्तशक्ति अथवा अंतरङ्गशक्ति या आत्ममाया है । गीतामें भी इस आत्म-मायाका उल्लेख पाया जाता है । त्रिगुणात्मिका माया अर्थात् भगवान् की अविद्या रूपिणी बहिरङ्गशक्ति और आत्म-माया शक्ति एक नहीं है । ये पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं । ‘परास्य शक्तिविविधं श्रुयते’—उपनिषद् मंत्रके अनुसार भगवान् की पराशक्ति भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकाशित होती है, जिनमें तीन प्रधान हैं—चित् शक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति । जीवशक्तिको जडशक्तिसे अेष्टु जान लेने पर ही हम लोग आत्म-माया और गुण-मायाका भेद उपज्ञायि कर सकते हैं ।

आत्म-मायामें जडा-प्रकृति और विकार नहीं होते । अर्थात् जडा-प्रकृतिमें अम, प्रमाद, आदि दोषों की संभावना रहती है; परन्तु परा-प्रकृतिमें इसकी कठई संभावना नहीं होती । परा-प्रकृति द्वारा प्रकृति जीव जब तक भौतिक शरीरमें वास करते हैं, तभी तक वे जड़ शरीरमें आत्मबुद्धि करते हैं । परन्तु भौतिक शरीरसे परा-प्रकृति (आत्मा) के निकल जाने पर भौतिक शरीरका परिणाम सहज ही अनुसेय है । उजुमें संप्रभ्रम, तपे हुए बालूके ऊपर जलभ्रम, एवं जलमें कौचभ्रम—यह सब दोष जडा प्रकृतिमें ही संभव है, चेवन शक्तिमें ऐसे-ऐसे अमोंकी संभावना विलक्षण ही नहीं होती । जड़का मूल्य इसलिये

है कि उसमें चेतन वस्तु बर्त्तमान है । अतएव जड पदार्थकी विचित्रताओंका मूलाधार चेतन है । जड़का वैशिष्ट्य चिद् वैशिष्ट्यका विपरीत प्रतिफलन मात्र है । सूर्यका प्रकाश जलके ऊपर पड़नेसे उससे ज्ञानाभाना निकलती है, उस ज्ञानाभानी ही सृष्टि स्थिति और प्रलय है । सूर्यके प्रकाशकी सृष्टि, और लय आदि नहीं है । इस प्राकृत उदाहरणसे ही हम समझ सकते हैं कि चेतन वस्तुकी सृष्टि नहीं है और लय नहीं है । परन्तु चेतनके विपरीत प्रतिफलन रूप जड़-वैशिष्ट्य के ही सृष्टि, स्थिति और लय होते हैं । उसमें भी जो स्थिति दीख पड़ती है वह इन्द्रजालकी तरह अभी है, तो अभी नहीं है । अतः जड़मायासे अतीत नाम, ज्ञान, रूप, गुण और परिकर-वैशिष्ट्य सहित स्वतः प्रकाशमय तत्त्व ही—परम सत्य वस्तु है ।

जीव-सत्त्वाको तटस्था-शक्ति कहा जाता है । क्योंकि चंचल जीव कभी जडा शक्तिके अधीन होता है, तो कभी परा-शक्तिके आश्रित होता है । किन्तु जो अक्षय पुरुष कभी भी शक्तिके अधीन नहीं होते, जो उस शक्तिके अधीश्वर रूपमें नित्य विराजमान है, वे कुटस्य पुरुष परम ब्रह्म भगवान् बासुदेव ही—अद्वय ज्ञान परम सत्य है । उस परम सत्यसे ही समस्त शक्तियोंका परिचय पाया जाता है । इसलिये वे शक्तिमान तत्त्व हैं । स्वराट् और ‘परम’—इन दोनों तत्त्वों के संयोगसे ही परतत्त्व, सर्वकारणोंके कारण, शाश्वत आदि पुरुषक रूपमें परिचित होते हैं । वे अप्राकृत पुरुष कभी मायाके अधीन नहीं होते—यह श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकसे प्रमाणित होता है—

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युञ्यते सदाप्रस्थैर्यथा तुदिस्तदाप्रया ॥

(श्रीमद्भा० १११३८)

भगवत्तत्त्वकी यह विशेषता है कि वे मायिक जगत्में अवतरण करके भी मायिक गुणोंसे संयुक्त नहीं होते । उसी प्रकार भगवद्भक्तजन भी मायाके प्रति आकृष्ट नहीं होते । जैसे भगवान् नित्य है, मुक्त है और शुद्ध है; उनके भक्त भी—चाहे वे किसी भी

अवस्थामें क्यों न रहें—नित्य मुक्त और शुद्ध होते हैं। किन्तु चेतन राज्यके अपरिक पश्चिक कभी-भी भगवान्‌को मनुष्य और मनुष्यको भगवान् मानकर भयकर भूल करते हैं। किन्तु उनके कहनेसे ही भगवान् वैसा हो नहीं जाते।

मेरे एक परिचित ब्रह्मचारीजी हैं। वे एक दिन ढा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन महोदयसे मिले थे। ढा० राधाकृष्णन आजकल भारतके उपराष्ट्रपति हैं। उस भेटके दौरानमें ब्रह्मचारीजीको Bhagawat Gita नामक एक पुस्तक उपहारमें मिली थी। यह पुस्तक श्रीगीताका अँगेजी भाष्य है, जिसके लेखक स्वयं ढा० राधाकृष्णन हैं। आजकल गाजारमें यह पुस्तक इस रूपयेमें खूब चिकटी है। एक दिन ब्रह्मचारीजी मुझसे मिलने आए। बातचीतसे मालूप हुआ, ब्रह्मचारीजी उस पुस्तकको पढ़ कर सन्तुष्ट नहीं हो सके हैं। क्योंकि उक्त पुस्तकमें अग्राकृत अनुमूलिके अभावमें अनेक ऐसी बातें लिखी गयी हैं, जो सात्वत-समाजमें किसी दिन भी आदरणीय नहीं हो सकती हैं। श्रीमद्भागवतका उपरोक्त 'मुह्यन्ति यत सूरयः' श्लोक प्रत्यक्ष रूपमें यहाँ प्रतिक्रिया देता है। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, बरुण आदि देवगण भी जिस परम तत्त्वके सम्बन्धमें मोहित हो जाते हैं, वहाँ ढा० राधाकृष्णन भी यदि मोहित हो जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

ब्रह्मचारीजीको सबसे अधिक स्वेद ढा० राधा कृष्णनकी गीताके पृष्ठ २५४ में नवें अध्यायके ३४वें श्लोकका अर्थ पढ़कर हुआ है। उन्होंने बड़े ही दुःखित होकर मुझसे उक्त पुस्तककी समालोचना करनेके लिये अनुरोध किया। बहुत कुछ उनके अनुरोधसे ही मैं उस प्रन्थकी समालोचनामें प्रवृत्त हो रहा हूँ। उक्त ३४वें श्लोकके भाष्यमें ढा० राधाकृष्णनने इस प्रकार लिखा है—

'It is not the person Krishna to whom we have to give ourselves up utterly but the Unborn, Beginningless

Eternal who speaks through Krishna.' ढा० राधाकृष्णन जैसे विश्वविह्यात दार्शनिकके साथ हम तर्कवितर्कमें पड़ना नहीं चाहते। किंतु भी ब्रह्मचारीजीके अनुरोधसे उक्त पुस्तकमें जो सब विहृद्ध अर्थं प्रकाशित हुए हैं, उन्हें दिखलानेके लिये मैं बाध्य हुआ हूँ। भारतके उपराष्ट्रपति होनेके नाते ही नहीं, अपितु एक विश्व-विह्यात दार्शनिक विद्वान् और हिन्दू-दर्शनके प्रधान आचार्य होनेके नाते ढा० राधाकृष्णनके प्रति हमारी छटूट अद्धा है। केवल यही नहीं, वे नैषिक ब्रह्मण और ब्रह्मवादी पारमार्थिक भी हैं। प्रवाद है—'परिदृष्टोसे शक्ता भली है, किन्तु मूर्खोसे मित्रता भली नहीं।' इसमें हम लोगोंको और भी साहस होता है। परिदृष्ट कृत्यक्रिया विपक्षमें होने पर भी समझ-बूझकर प्रतिवाद करते हैं; परन्तु मूर्ख कृत्यक्रिया मिश्र होने पर भी बहुधा विपरीत फल होता है। अतः हम ढा० राधाकृष्णनके अँगेजी गीता-भाष्यका तीव्र प्रतिवाद करनेसे डरते नहीं हैं।

एक प्रवाद है—सातोंकाशड रामायण पढ़ कर भी सीता किसके बाप है?—यदि कोई ऐसा प्रश्न करे तो वह निश्चय ही हास्यरपद है। उपरोक्त गीता भाष्यमें ऐसी ही विरुद्ध चातोंको देखकर हम बड़े दुःखित हुए हैं। उन्होंने लिखा है कि व्यक्ति कृष्णमें प्रवत्ति नहीं करनी होगी; बल्कि प्रपत्ति करनी होगी—श्रीकृष्णके अन्तर विराजमान अनादि एवं अज तत्त्वकी। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि ढा० राधाकृष्णन श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके अन्तरमें विराजमान तत्त्वको (?) पृथक् यानते हैं। अर्थात् ढा० राधाकृष्णनके मतानुसार श्रीकृष्णमें भी देह और देहीका भेद वर्तमान होता है (वास्तवमें श्रीकृष्णमें देह-देहीका भेद नहीं होता)। अतएव श्रीकृष्णके शरीरकी प्रपत्ति प्रहरण न करके श्रीकृष्णके अन्तर्यामीकी प्रपत्ति प्रहरण करने योग्य है—यही उनका विचार है। इस नवीन आविष्कारके लिये हम श्रीराधाकृष्णनको उपरोक्त रामायणीकी श्रेणीका समझते हैं। क्योंकि गीताका एकमात्र चरम प्रतिपाद्य विषय-परात्परतत्त्व श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागतिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

है। परन्तु डा० राधाकृष्णनको इस मूल विषयमें ही आपत्ति है। गीताकी चरम कथा है—

सर्वं धर्मानि परित्यज्य मामेकं शरणं अज ।

अहं स्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

श्रीकृष्ण अजुं नसे कहते हैं कि विना किमी आपत्ति के ही उनके (श्रीकृष्णके) चरणोंकी प्रपत्ति प्रहरण करनी चाहिए। 'शरणं'—शब्दका अर्थ 'शरणागति' मे है। एवं डा० राधाकृष्णनने शरणागतिके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, उम उसे उद्धृत कर रहे हैं—

Prapatti has the following accessories, (1) Good will to all (anukulyasya samkalpa), (2) Absence of ill will (Pratikulya Vivarjanam), (3) Faith that the Lord will protect (rakshishyatiti Viswasapalanam), (4) Resort to him as savior (goptritvey varnam tatha), (5) Sense of utter helplessness (Karparyam), (6) Complete surrender (atmanikshepa).

—(Introductory essay of Gita,
Page 62)

यह छः प्रकारकी शरणागति एकमात्र कृष्ण अथवा विष्णुके सम्बन्धमें ही प्रयुज्य है। क्योंकि शरणागतिका उल्लेख केवल वैष्णव-तन्त्रों या शास्त्रोंमें ही पाया जाता है। डा० राधाकृष्णनने 'आनुकूल्यस्य संकल्पः'—का अर्थ 'सबके प्रति समदर्शन' बतलाया है। किन्तु सबके प्रति शरणागति क्या कभी संभव है? शरणागति एकमात्र भगवान्‌के व्यक्तित्वके प्रति ही संभव है। संसारके लोगोंके प्रति अथवा जीवोंके प्रति शरणागति कोई क्रियात्मक तत्त्व नहीं है। डा० राधाकृष्णनसे पहलेके समस्त आचार्यों और गोस्वामियोंने 'आनुकूल्यस्य संकल्पः' का अर्थ 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्' लगाया है। अतएव उन वडे-वडे प्रामाणिक आचार्योंका उल्लंघन करके कोई भी विद्वान् व्यक्ति डा० राधाकृष्णन की वाँगोंको माननेके लिये तैयार न होगा। उन्होंने जब 'Faith in Lord' शब्दोंका व्यवहार किया है, तब उन्होंने भगवान्‌को ही लक्ष्य

किया है। अतएव भगवान्‌को लक्ष्यकर फिर बीचमें निर्विशेष ब्रह्माको खड़ा कर देना—यह उनकी समझसे युक्ति संगत कैसे हुआ—कुछ समझमें नहीं आता। क्या अजुं नने 'शिव्यस्ते अहं', 'मां प्रवन्नम्'—आदि वाक्योंसे साच्चान् कृष्णको ही लक्ष्य नहीं किया है? निर्विशेष ब्रह्म-तत्त्वकी आलोचना उस समय तक तो आरंभ ही नहीं हुई है। और जब गीतामें कृष्णने अपनेको (कृष्णको) निर्विशेष ब्रह्म-तत्त्वकी प्रतिष्ठा बतलायी है, तब मूल-तत्त्व गुणी-पुरुष श्रीकृष्णको होड़कर उनके आधित गुण तत्त्वरूप निर्विशेष ब्रह्मके प्रति शरणागति, मला युक्तिसंगत कैमे हो मकनी है? निर्विशेष निराकारके प्रति प्रपत्ति करई संभव नहीं है—पूर्ण अयुक्तिसंगत है। निर्विशेषवादी चाहे मितना भी भिर क्यों न वीटे, अंत तक मायिक मविशेष खी-पुत्रादिके प्रति ही उनकी प्रपत्ति हो पड़ती है।

मायाकी विचेषात्मिका शक्तिके प्रभावसे बहुधा दुष्टवादी लोग अपनी बाक् चातुरीसे भगवान्को मायारण लोगोंको हाइसे ओफल रख सकते हैं—इस बातको हम भागवतीय सिद्धान्तके द्वारा जान पाते हैं। पश्चिमोंके ऊपर कलिका जैसा प्रभाव होता है, उसे श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

कलौ न राजन् जगतो परं शुरु'

त्रिलोक-नाथानत-पादपद्मजम् ।

प्रायेण मर्त्या भगवन्तमनुरुतं

यज्ञन्ति पाषण्ड-विनिष्ठ-चेतसः ॥

(मा० १२।३।४२)

अर्थात्, परीक्षित! कलियुगमें लोगोंका चित्त इतना विकृत हो जाता है—इतना भटक जाता है कि वे—तीनों लोकोंके अधीश्वर ब्रह्म। आदि देवगण जिनके चरण-हमलोंकी निरंतर बंदना करते हैं—उन जगत्के परमगुरु भगवान् श्रीहरिकी आराधनासे भी विमुक्त हो जाते हैं। डा० राधाकृष्णने भी साच्चारण परिषद्वारोंकी तरह 'आनुकूल्यस्य संकल्पः' का अर्थ 'Good will for all' लिखा है।

भक्तिके लेखमें अद्वा अर्थात् प्रपत्ति ही प्रथम सोपान है। प्रपत्तिका एकमात्र अर्थ है—अपनेको भगवान्‌का सेवक मान लेना। इस प्रपत्तिका बद्धा करनेके लिये डा० राधाकृष्णन जैसे महा महोपाधिक और ज्ञानीको अनेक तपस्या करनी पड़ेगी—यही गीताका सिद्धान्त है। डा० राधाकृष्णनने जिस प्रकारकी शारणागतिका उल्लेख किया है, वह व्यष्टिका तंत्रोंकी कथा है। अतएव पड़वधा शाश्वागति एकमात्र भगवान् विष्णुकी आराधनाके सरबधर्ममें प्रयुक्त है। श्रीविष्णुकी आराधना करनेवालोंका ही नाम ही 'वैष्णव' है। 'आनुकूल्यस्य' शब्दका अर्थ है—भगवान्‌की अर्थात् भगवान् अकृष्णकी रोचमान सेवा। 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुक्यते'। संसारमें ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है, जो कृष्णका अनुशीलन कर रहा हो; कोई अनुकूल रूपमें कृष्ण अनुशीलन करता है, तो कोई प्रतिकूल रूपमें। किन्तु कृष्णानुशीलन करते हैं सभी। जो कोण प्रतिकूलभाव संकृष्णानुशीलन करते हैं, वे अभक्त हैं और जो अनुकूल रूपसे कृष्णानुशीलन करते हैं, वे भक्त हैं। वास्तवमें अनुकूल अनुशीलन करनेवाले ही बुद्धिमान हैं। अभक्त दलोंके नेतृत्वादेप्रतिकूल भजनकारी कंस, जरासंघ आदि जैसे प्राकृत परिषद्गत हैं।

श्रीगीता का मूल सिद्धान्त है—भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत होना। यह थात् स्वयं श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कही है। किन्तु वहे खेदका विषय है कि डा० राधाकृष्णन इस मूल सिद्धान्तको उलट कर यह कहना चाहते हैं कि—'Surrender not to the Person Krishna.' श्रीगीताको अवलम्बन कर अपनी जह परिवर्त्य-प्रतिभाके बलपर, श्रीगीताके बक्ता स्वयं श्रीकृष्णको मूढ़तावश मनुष्य समझना ठीक उसी प्रकार है, जैसे वेदोंका आश्रय कर नास्तिक्यवाद प्रदर्शन करना। इस प्रकार वेदकी आइमें नास्तिक्यवाद-दर्शनको सीधासीधी प्रतिकूल कृष्णानुशीलनके सिवा और कहा ही क्या जा सकता है।

इस प्रकार वेदोंकी आइमें नास्तिक्यवादके प्रचार के पचासाती डा० राधाकृष्णन जैसे परिषद्गतोंको भगवान् श्रीकृष्णने जैसा सम्मान हिया है, उसे हम श्रीगीताके डा०१५ श्लोकमें देख पाते हैं—

न मां दुष्कृतिनो मृदा प्रपथन्ते न राघवाः।

मायवापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

प्रतिकूलरूपमें कृष्णानुशीलनकारी कंस, जरासंघ आदि असुरबृन्द एवं प्रतिकूल रूपमें भगवद्गीताका अनुशीलन करनेवाले मायिक परिषद्गतगण—दोनों एक समान हैं। इस प्रकार प्रतिकूल अनुशीलन करनेवाले असुरोंका ज्ञान भावाद्वारा चुराया गया होता है अर्थात् उनका ज्ञान शुद्ध नहीं होता है। कंस, जरासंघ आदि सब प्रकाशद-प्रकाशद विद्वान् थे, किन्तु प्रतिकूलरूपमें कृष्णानुशीलन करनेके कारण वे सभी असुर कहलाये हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिष्या और उनके आचरण से यह शिळा भिलती है कि अनुकूलरूपमें गीताका अनुशीलन करना ही हमारा कर्त्तव्य है। जब श्रीचैतन्य महाप्रभु दक्षिणमें भ्रमण कर रहे थे, उस समय वे श्रीरङ्गलेखमें भी पथारे थे। वहाँ पर उन्होंने श्रीरङ्गनाथके मन्दिरके प्राङ्गणमें एक सरल ब्राह्मणको बड़े प्रेमसे श्रीगीताजीका पाठ करते देखा। यद्यपि उनका उच्चारण अशुद्ध होता था तथापि उसके नेत्रोंसे निरन्तर आँसू गिर रहे थे, सारा शरीर पुलकित हो रहा था। ऐसा देख कर महाप्रभु बड़े आनन्दित हुए। वे उस ब्राह्मणकी प्रशंसा करने लगे। ब्राह्मणके पड़ोसी लोगोंकी धारणा यह थी कि उक्त ब्राह्मण गीताका पाठ कैसे कर सकता है? किन्तु महाप्रभुजीने दिखला दिया कि श्रद्धावान् व्यक्त ही गीता-पाठका यथार्थ अधिकारी है। कोरा पारिषद्त्य गीता-पाठका यथार्थ अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। (कमशः)

—श्रीअभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त,
एडिटर, बैकटू-गौडहेड

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या १२, पृष्ठ २७७ से आगे]

'विशेष' शब्दका प्रयोग

'विशेष'-शब्दका प्रयोग जीव गोस्वामीने 'गीरव' के अर्थोंमें ही किया है। जिन लोगोंने जीव गोस्वामी के घट-सन्दर्भ और सर्व सम्बादिनीका आदि प्रन्थोंको एकाप्रचित्तसे पढ़ा है तथा हृदयसे अनुप्राणित होकर पूर्णहपेण उनका अध्ययन किया है, वे इसकी मार्थकता उपलब्धि कर सकते हैं। विद्याविनोद महाशयका चित्त 'बहु शास्त्र-कलाभ्यास' के द्वारा विक्षिप्त हो गया है। यदि ऐसी वात न होती तो श्रीजीव गोस्वामी चरण की भाषाकी ऐसी विशेषता अवश्य ही लक्ष्य करते। मैं इस प्रसङ्गमें तत्त्व-सन्दर्भके २८ वें अनुच्छेदकी प्रथम पंक्तिके प्रति पाठकोंकी हाइ आवधिकरण कर रहा हूँ। जैसे—‘अत्र च स्व-दर्शितार्थ विशेष—प्रामाण च-पैव ।’—(अपने दिखलाये हुये अर्थ-विशेषकी प्रामाणिकता के लिये) इस जगह भी श्रीजीव गोस्वामीने ‘स्व-दर्शितार्थ-विशेष’—ऐसा वाक्य प्रयोग किया है। अब मुन्दरानन्दके मतानुसार यहाँ पर यदि 'विशेष'-शब्दका अर्थ लगाया जाता है तो जीव गोस्वामीका सिद्धान्त या मत एक साधारण और तुच्छ अर्थ-विशेष हो पड़ता है। क्या मुन्दरानन्द इसे स्वीकार करेगे ? हमारी समझसे वे ऐसा कदापि नहीं कर सकते। हमारा कहना है—यहाँ पर जीव गोस्वामीने अपने प्रदर्शित सर्वोत्कृष्ट विशिष्ट अर्थके प्रति लक्ष्य करके ही 'अर्थ-विशेष' वाक्यका प्रयोग किया है और उसकी प्रामाणिकता स्थापन करनेके लिये ही मध्वा-चार्यके विशिष्ट वैष्णव मतका विचार प्रहृण किया

है। इस अनुच्छेदमें प्रचुर-प्रचारित 'वैष्णवमत-विशेष' एवं 'स्व-दर्शित-अर्थ विशेष'—इन दोनों वाक्योंका तात्पर्य एक है। इस प्रकारके गृह तात्पर्यको भजीमाँति न समझकर अपना स्वक्षेप-कलित अर्थ प्रहणा करनेसे यथार्थ सिद्धान्त आच्छादित हो पड़ता है। विद्याविनोद महाशयने यदि इस प्रसङ्गमें तत्त्व-संर्भका उक्त पूरा अनुच्छेद अपने मन्थमें उद्धार कर उसका विश्लेषण किये होते अथवा विश्लेषण न कर केवल उद्ध त करके ही निरपेक्षता दिखलाये होते तो भी दार्शनिक और ऐतिहासिक तत्त्व-पिपासु पाठक-वृन्द ओजीवगोस्वामी चरणका यथार्थ मत समझ पाते। एवं विद्याविनोद महाशयकी वाक् खातुरी द्वारा कभी भी वंचित नहीं होते। इसने उनके इस प्रकारके असत् उद्देश्यमूलक ज्ञान-खलताका विषय पहले भी निवेदन किया है।

ओजीवगोस्वामीने अपने दिखलाये हुए 'अर्थ-विशेषकी प्रामाणिकता स्थापन करनेके लिये मध्वाचार्य एवं उनके सम्प्रदायके शिष्य—प्रशिष्य आदि सबके मत-वैशिष्ट्यका आनुगत्य स्वीकार किया है। दक्षिणादि-देशविह्यात्-शिष्योपशिष्यभूत' वाक्यके द्वारा ही इस तथ्यको स्थष्ट कर दिया है। केवल यही नहीं, उन्होंने श्रीमन्मध्वाचार्यके सम्प्रदायके नितांत अनुगत प्रधान-प्रधान आचार्योंका आनुगत्य स्वीकार कर एवं उनके रचित ग्रन्थोंसे प्रमाण संग्रह कर 'स्व-दर्शित-अर्थ-विशेष' की स्थापना की है विजयध्वज, ब्रह्मातीर्थ व्यासतीर्थ आदि जैसे अनेक महाजनोंका नाम उल्लेख कर अपना मत मध्व-सम्प्रदायसे प्रदीत हुआ है—

*श्रीश्रीकृष्णचैतन्यदेववामानं श्रीभगवन्तं काञ्जुरोऽस्मिन् वैष्णवजनोपास्थावतारतपार्थविशेषालिङ्गितेन
श्रीभगववपचासदादेन स्तौति ।

(बहीष साहित्य-परिषद् मन्दिरसे ११२० सालमें प्रकाशित, सर्वसम्बादिनी, पृष्ठ १)

अपना मत मध्व-सम्प्रदायसे गृहीत हुआ है—इसे उन्होंने गौरवके साथ प्रकाश किया है। उक्त बाक्यके अंतमें अर्थात् ‘व्यासतीर्थादि’ इस पदके अन्तमें ‘आदि’ शब्द का प्रयोग कर जीव गोस्वामीने माध्वसम्प्रदायके गुरु-परम्पराके समस्त आचार्योंको ही लक्ष्य किया है। इसके अतिरिक्त ‘शिष्योपशिष्यभूत’ बाक्य द्वारा यह सब प्रकारसे स्वीकृत है कि श्रीजीवचरणने माध्व-सम्प्रदायके आचार्य-परम्पराके अतिरिक्त किभी दूसरे सम्प्रदायके गुरु-परम्परा अथवा शिष्य-परम्पराके मतको प्रहण कर उनसे प्रमाण लेकर अपने मतकी पुष्टि नहीं की है।

साम्प्रदायिक आचार्योंने जिस प्रकारसे अपना-अपना साम्प्रदायिक सिद्धान्त स्थापन करनेके लिये अपने-अपने पूर्व-गुरुवर्गके ग्रन्थोंका अवलम्बन किया है, उसी प्रकार श्रीजीवपादने भी प्रकाश्य रूपमें तत्त्व-संदर्भके द्वारा तत्त्वका निरूपण करनेमें माध्व-सम्प्रदाय के आचार्योंको अपने सम्प्रदायका पूर्व-गुरु मानकर उनके ग्रन्थोंका अवलम्बन करके ही श्रीमन्महाप्रभुका सिद्धान्त स्थापन और प्रकाश किया है। यह साम्प्रदायिक रीति है। मध्व-सम्प्रदायके आचार्योंने जिस प्रकार अपना मत स्थापन करनेके लिये अन्यान्य शास्त्रोंसे भी प्रमाण लिये हैं, उसी प्रकार जीव गोस्वामीने भी माध्व-सम्प्रदायके आनुगत्यमें माध्व-गौहीय सिद्धान्त स्थापन करनेके लिये अथवा स्व-मत प्रदर्शन करनेके लिये एक ही धाराका अवलम्बन कर दूसरे-दूसरे शास्त्रोंसे प्रमाण प्रदृष्ट किया है। अतएव श्रीमाध्व-धारा या श्री गौहीय धारा एक ही वात है—इसे दिखलानेके लिये श्रीजीव पादने तत्त्व-संदर्भके रूपमें अनुच्छेदमें ऐसा लिखा है। विद्याविनोद महाशय स्पष्टरूपसे ऐसा समझ करके भी अनन्तवासुदेव आदि सहजिया जनोंके कुसंगके प्रभावसे इस विपरीत सिद्धान्तका स्थापन करनेके लिये अवश्य ही कठिच्छ है।

यद्यपि श्रीजीव गोस्वामीने ‘स्वदर्शित अर्थ-विशेष’ बाक्यका प्रयोग किया है तथापि उन्होंने उसके द्वारा कोई स्व-कपोलकलिप्त मतकी स्थापना नहीं की है। बल्कि स्व-मतके द्वारा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु अथवा

श्रीमाध्वेन्द्र-पुरीपाद और उनके पूर्व-पूर्व आचार्योंके मतका ही लक्ष्य किया है। इतना ही नहीं, उसके द्वारा उन्होंने श्रीरूप-सनातन और अद्वैताचार्य आदि अपने साक्षात् गुरुजनोंके मतका भी लक्ष्य किया है। ‘स्व-मत’ या ‘स्व-दर्शितार्थ’—इन दोनों पदोंका ऐसा अर्थ करना ही सब प्रकारसे सुसङ्गत है। अतएव उक्त पूर्वाचार्योंके मतको स्व-मत अर्थात् अपना मत कहनेसे अत्यधिक गौरवका भाव ही भलकरता है।

श्रीजीव पादद्वारा कहे गये ‘अर्थ-विशेष’ बाक्य-द्वारा किसी प्रकारकी हेयता अथवा तुच्छता प्रकाशित नहीं हुई है अथवा नहीं होती है। इसे विद्याविनोद महाशय भी निश्चय ही स्वीकार करेंगे। श्रीजीव-गोस्वामीने अपने निज-सिद्धान्तके प्रति अथवा अपने गुरुजनोंके (गोस्वामियोंके) सिद्धान्तके प्रति अभद्रा प्रकाश करनेके लिये ‘अर्थ-विशेष’ या ‘मत-विशेष’ वाक्योंका प्रयोग नहीं किया है। यदि जीव गोस्वामी का अभियाय मध्यमतको हेय अथवा दूसरे साधारण मतोंके समान एक साधारण मत निरूपण करना होता तो वे श्रीमाध्व-आचार्य और उनके शिष्य-प्रशिष्य आचार्योंके वचनोंको प्रमाणके रूपमें प्रहणकर अपने मतकी पुष्टि न किये होते। किसी मतको हेय मानकर भी उसके सिद्धान्तके प्रमाणके रूपमें प्रहण कर उससे अपने मत की पुष्टि करना सर्वथा अयुक्त सङ्गत है। अतएव जीव गोस्वामीने ‘वैष्णव-मत-विशेष’ बाक्यका प्रयोग कर माध्व मतकी हेयता या तुच्छता दिखलायी है—सुन्दरानन्दका यह अभियोग सम्पूर्ण निराधार है। सुन्दरानन्दका यह अभियोग किसी प्रकार भी न तो स्थापित हो सकता है और न स्वीकार ही किया जा सकता है।

श्रीजीव गोस्वामीने जिस प्रकार अपने मतको ‘अर्थ-विशेष’ कहा है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीमाध्व-आचार्यके मतको भी वैष्णव ‘मत-विशेष’ कहा है। इस-लिये मध्व सम्प्रदायका ‘मत-विशेष’ यदि महाप्रभुका मत न होकर एक पृथक् मत है, तब श्रीजीव गोस्वामी चरणका ‘अर्थ-विशेष’ भी महाप्रभुका मत नहीं कहा जा सकता। श्रीजीव गोस्वामीके ‘अर्थ-विशेष’ और श्रीमाध्वके ‘मत-विशेष’—इन दोनों वाक्योंमें अन्तर

हो क्या है ? दूसरी बात यह है कि विद्याविनोद महाशय यह स्वीकार करनेके लिये बाध्य होंगे कि यदि जीव गोस्वामीका 'अर्थ-विशेष' महाप्रभुका मत माना जाता है तो उसी तरहका वाक्य श्रीमध्यका 'मत-विशेष' भी महाप्रभुका मत अवश्य ही माना जायगा । इसमें संदेहकी तर्जिक मी गुंजाइश नहीं है । अतएव ऐसे अनुच्छेदमें श्रील जीवपादने माध्यमतके लिये प्रचुर प्रचारित 'बैष्णवमत-विशेष'—वाक्यका प्रयोग कर उसे महाप्रभुके मतके साथ एक और मूल उपादान स्वरूप माना है । उन्होंने इससे द्वारा दोनों मतोंको पृथक् नहीं माना है ।

केवल मत-भेद ही सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं

तर्कके लिये यदि विद्याविनोद महाशयकी व्याख्या मान भी ली जाय अर्थात् बैष्णव-मत-विशेष' कहनेसे एक पृथक् सम्प्रदायका बोध होता है—ऐसा मान लिये जाने पर भी गौड़ीय बैष्णव सम्प्रदायको श्रीमध्य-सम्प्रदायसे मूलतः अलग सम्प्रदाय नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि केवल मतभेदका होना ही सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं है । अथवा सुन्दरानन्दने उक्त ऐसे^३ अनुच्छेदकी बलदेव विद्याभूषण द्वारा रचित व्याख्या उद्धृत करके 'मत-विशेष' वाक्यके द्वारा श्रीमाध्य-सम्प्रदाय और श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय बैष्णव सम्प्रदायको पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय सिद्ध करनेके लिये प्रयत्न प्रयास पाया है । यद्यपि 'मत भिन्न होनेसे सम्प्रदाय भी भिन्न होता है, तथापि श्रीबलदेव विद्याभूषणपादकी उक्त व्याख्या सम्प्रदायके भेदको दिखानेके लिये नहीं है; बल्कि श्रीमध्यके साथ महाप्रभुके मतका बैष्णवित्य विद्यमान रहने पर भी उनमें परस्पर सम्प्रदायका भेद नहीं है—यही तात्पर्य है । इस अपनी इस युक्तिकी पुष्टिमें यह कहना चाहते हैं कि

विद्याविनोद महाशयका बलदेव विद्याभूषणके विरुद्ध सर्वप्रधान अभियोग यह है कि—'वे गौड़ीय सम्प्रदाय को माध्य-सम्प्रदायके अन्तभूत करनेमें अत्यन्त आपह + दिखलाये हैं ।' जरा सोचनेकी बात है कि जो गौड़ीय सम्प्रदायको माध्य सम्प्रदायके अन्तभूत घतलाते हैं, वे भला, मध्यके साथ श्रीमन्महाप्रभुका विरोध दिखलाने क्यों जायेंगे ? इसमें गृह रहस्य तो यह है कि इन दोनोंमें किसी विशेष ज्ञेयमें कोई मतभेद या मत-बैष्णवित्य विद्यमान रहने पर भी वह सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं है ।

इस विषयको दो एक उदाहरणोंके द्वारा और भी स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है—

(क) अद्वैतबादियोंका कथन है कि 'श्री जीव गोस्वामी और श्रीकृष्णदास कविराजमें परस्पर मत-भेद है । क्योंकि श्रीजीव गोस्वामी ईश्वर और जीवमें अभेद स्वीकार करते हैं—भेद नहीं । उन्होंने केवल ईश्वर और ईश्वरमें ही (विभिन्न ईश्वर स्वरूपोंमें ही ही परस्पर) अचिन्त्य शक्तिके कारण अचिन्त्यभेद-भेद स्वीकार किया है । यहाँ तक कि उन्होंने जीवको ईश्वरसे पृथक् तत्त्व ही नहीं स्वीकार किया है । इसलिये उन्होंने अद्वैतबादकी ही पुष्टि की है । (स्मरण रहे कि विद्याविनोद महाशयने भी अद्वैतबादियोंकी इस युक्तिकी पुष्टिमें युक्ति पेश की है) किन्तु श्रीकविराज गोस्वामीने जीवको ईश्वरका विभिन्नांश और तटस्थ शक्ति मान कर ईश्वरके साथ जीवका अचिन्त्यभेद-भेद स्वीकार किया है । अतएव श्रीजीव और श्रीकृष्णदास कविराजमें मतभेद है ।' (क) अद्वैतबादियोंने श्रीजीव गोस्वामीका श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीके साथ व्यर्थका मतभेद दिखला करके भी उनमें परस्पर साम्प्रदायिक भेद नहीं (दिखलाया है ।)

(क्रमशः)

^३ सुन्दरानन्द कृत अचिन्त्यभेद-भेदवाद—पृष्ठ २४३, अनुच्छेद-२; और उसकी पद टीका द्रष्टव्य है ।

+ अचिन्त्य भेद-भेदवाद—पृष्ठ २४१, पंक्ति १५-१७ ।

(क) भारतवर्ष नामक सालिक पत्रिकामें १३३२ वर्गांशमें भारतपदकी संख्यामें प्रकाशित महामहोपाध्याय कथित्यभूषण तर्क वार्ताश महोदयके 'जीव और ईश्वरमें भेद और अभेद' नामक लेख से ।

चातुर्मास्य-ब्रत

ब्रतारम्भ

श्रीभगवान् वर्षोंके चार महीने शयन करते हैं। इस शयनकालमें मनुष्यमात्रको अपनी हरि-सेवा-प्रवृत्तिको क्रमशः बढ़ाना चाहिए। इस लिये आगामी १६ आषाढ़, १ जुलाई, मङ्गलवार, गुरुपूर्णिमासे श्रीगौवीय वेदान्त-समितिके समस्त मठोंमें चातुर्मास्य-ब्रतका आरम्भ होगा। मठके समस्त त्रिदिविड़ संन्यासीवृन्द, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थीगण एवं समितिके अनुगत समस्त गुहाख भक्तजन उसी दिनसे चार महीनों तक नियम-सेवाका विधिवत पालन करना आरम्भ करेंगे।

कुछ लोगोंका द्याल है कि चातुर्मास्य ब्रत एक कर्मकारणीय व्यापार है। किन्तु उनका यद रुपाल सम्पूर्ण निराशार है। क्या कर्मी, क्या शासी, क्या भक्त और क्या गुहाख, ब्रह्मचारी, संन्यासी, ब्राह्मण ज्ञात्रिय और वैश्यादि वर्णवाले प्रत्येक हिन्दूके लिये चातुर्मास्य ब्रतका पालन करना कर्त्तव्य है। कोई कोई चार महीनों तक नियम-सेवा पालन करनेमें असमर्थ होते हैं। इसलिये वे चार महीनेमें से केवल एक महीने तक दामोदर ब्रत-या कार्त्तिक ब्रत का ही पालन करते हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि चातुर्मास्य-ब्रत पालन करनेकी आवश्यकता ही नहीं है।

समय गणना

चातुर्मास्यकी गणना तीन प्रकारसे होती है। (१) आषाढ़ महीनेकी शुक्ला द्वादशीसे कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी तक। (२) आषाढ़ी पूर्णिमासे कार्त्तिकी पूर्णिमा तक, और (३) सौर आवण से सौर कार्त्तिक तक। इनमें से किसी भी एकके अनुसार चार महीनों तक नियम-सेवाका विधिवत पालन करना चाहिये।

विधि

सर्व-प्रथम ब्रतका संकल्प प्रहण करना चाहिए। संकल्प प्रहणका नियम यह है कि भगवान्‌के मन्दिरमें भगवान्‌के सामने हाथ जोड़ कर एकान्त मनसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए—‘हे भगवन् ! मैं आपके सामने चातुर्मास्य-ब्रत धारण करता हूँ। हे केराव ! आप ऐसी कृपा करें कि मेरा यह ब्रत विना किसी विघ्न-वादाके सिद्ध हो जाय।’

ब्रतके दिनोंमें तीर्थ वास, जमीन पर सोना, ब्रह्म-चर्य-ब्रतका पालन, पत्तलमें भोजन, अल्प आहार, अल्प शयन आदि उत्तम है। प्रतिदिन स्नान कर भगवान्‌की विधिवत पूजा करनी चाहिए। पुराण-आवण, अखण्ड दीप-दान, इष्टमन्त्र जप और इष्ट-देवकी विधिवत पूजा करना कर्त्तव्य है।

इन दिनोंके लिये एक दैनिक कार्यक्रम बना लेना अच्छा होता है। सूर्य तहके विष्णुनेसे उठ कर शौचादि नियमिकायासे निवट कर अपने अधिकारके अनुसार नियमपूर्वक संध्या-ध्यान्त्रिक, पूजा-पाठ और हरिनाम करना चाहिए। अधिकसे अधिक कोई संख्या निर्दीरित कर नियमितरूपसे हरिनाम करना चाहिए। भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंके निकट श्रीमद्भागवत आदि भक्ति-प्रन्थोंका अवण करना चाहिए। उसके अभावमें नियमितरूपमें स्वर्य ही पाठ करना चाहिए। नियमितरूपमें श्रीतुलसी महारानीकी, भगवानके मन्दिरोंकी और मथुरा, वृन्दावन, पुरी, द्वारका आदि धारोंकी साधुसङ्गमें परिक्रमा करनी चाहिए। साधुसङ्गमें नवधा भक्तिका पालन करना सर्वोत्तम विधि है। नवधा भक्ति इस प्रकार है—

(१) अवण—भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीला-काथओंका अवण।

(२) कीर्तन—भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लोका-कथाओंका कीर्तन करना ।

(३) स्मरण—भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लोका-कथाओंका स्मरण करना ।

(४) पादसेवन—देशकालादिके अनुसार परिचर्या और धामादि परिक्रमा ।

(५) अर्चन—योद्धोपचार द्वारा भगवान्‌का पूजन ।

(६) बन्दन-विविध प्रकारके स्तोत्रके द्वारा बन्दन करना ।

(७) दास्त्य—मैं भगवान्‌का दास हूँ—ऐसी भावना करना ।

(८) सख्य—सख्यभावकी भावना करना ।

(९) आत्मनिवेदन—शरीरसे लेकर शुद्ध आत्मा तक सब कुछ भगवान्‌को अर्पण करना ।

यों तो नवधा भक्तिके किसी भी एक अङ्गका विधिवत् पालन करनेसे अभीष्ट पूर्ण हो सकता है, किर भी हरिनाम-संकीर्तन सर्वोपरि हैं । क्योंकि कृष्ण-नाम और कृष्ण-खलूप एक ही वस्तु हैं । अधिकन्तु कृष्ण-स्वरूपकी अपेक्षा कृष्णनाम अधिक दयालु और पतित-पावन हैं । नाम-संकीर्तनमें भक्तिके ६४ अङ्ग पूर्ण मात्रामें अनुस्युत रहते हैं । नामसंकीर्तन करनेसे नवधा भक्तिका पालन करना हो जाता है । इसलिये इन दिनों प्रतिदिन सत्सङ्गमें भगवान्‌के मन्दिरमें अथवा इनके आभावमें किसी निर्जन स्थान में तुलसी महारानीके समीप अद्वापूर्वक भावपूर्ण हृदयसे हरिनाम करना चाहिए । विशुद्ध वैष्णव संतों की सेवा करनी चाहिए ।

एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि चातुर्मास्यवे समस्त विधिनिषेधोंका विधिवत् पालन करके भी यदि भगवद्भक्तिका आचरण न किया जाय तो वह सब कुछ प्राण-रहित शरीरकी भाँति विलकुल व्यर्थ होता है ।

जिस प्रकार एकादशीके दिन असमर्थ व्यक्तियोंके लिये अनुकूल—फल-फूल-और दूध आदिकी व्यवस्था की गयी है, उसी प्रकार चातुर्मास्यके चार महीनों

तक नियम-सेवा पालन करनेमें असमर्थ व्यक्तियोंके लिये भी एक अनुकूलपकी व्यवस्था ही गयी है । वह व्यवस्था है—दामोदर-ब्रत या कार्तिक ब्रत । किन्तु यह अनुकूल व्यवस्था केवल असमर्थ व्यक्तियोंके लिये ही है ।

निषेध

मनुष्य विषय भोगोंमें आसक्त होकर भगवान्‌ को भूल जाता है । भगवान्‌को भूलना ही समस्त दुःखोंकी जड़ है । इस लिये विषयभोगोंका अधिकसे अधिक जितना त्याग किया जाय, उतना ही अच्छा है । अपने भोगोंको जितना ही संकुचित किया जायगा—मन और शरीरके घर्मोंको जितना ही कम किया जायगा, साधक हरि-सेवामें उतना ही अधिक आपसर होगा ।

चातुर्मास्यके एक-एक महीनेमें कुछ-कुछ वस्तुओं का व्यवहार विशेष रूपसे वर्जित है । जैसे—(१) आवणमें पालक, वथआ एवं अन्य साग-पचे, (२) माद्रमें दधि, (३)-आश्विनमें दूध और (४)-कार्तिकमें आमिष अर्थात् मांस जातीय वस्तुएँ; जैसे सरसों तेल आदि । इनके अतिरिक्त सेम, बरबटी फली, परबल, बैंगन, मसूर और उड़दका परित्याग करना चाहिए । वासी और दूषित अन्न भोजन नहीं करना चाहिए । सामर्थ्यवानोंके लिये नमक, तेल, मधु आदिका उपभोग बर्जनीय है । प्याज, लहसुन, नागरमोथा, लौकी, छट्ठी, गाजरको परित्याग करना चाहिए । धूम्रपान, मरा-मांस, ताम्बूल आदिका सर्वथा वर्जन उचित है । ब्रतके दिनोंमें अंकुर और बीजयुक्त स्थानों में आवागमन निषिद्ध है । हरि कथाके अतिरिक्त सर्वदा मौन रहना चाहिए । ऐसे लोगोंसे दूर रहना चाहिए, जो ब्रतका पालन नहीं कर रहे हो ।

कुसङ्गसे सर्वदा व्यवस्था चाहिए । प्रथान कुसङ्ग दो हैं-एक, जो भगवद्भजन नहीं करते और दूसरे, जो खो-संगी हैं । नख और केश आदि नहीं कटवाना चाहिए; क्योंकि इनसे विज्ञासिता बढ़ती है और विज्ञासिता हरिभजनके मार्गमें प्रधान बाधा है ।

उद्देश्य

चातुर्मास्य ब्रतका पालन सभी लोग करते हैं। कर्मी—लौकिक और पारलौकिक सुख-भोगके उद्देश्य से, शानी—मोक्षके उद्देश्यसे तथा योगी-तपस्त्री सिद्धि प्राप्तिके उद्देश्यसे चातुर्मास्य ब्रतका पालन करते हैं। परन्तु इसका उद्देश्य इन्हीं नश्वर फलों तक ही सीमित नहीं है। इसका सर्व-प्रथान और चरम उद्देश्य कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति है। तब शास्त्रोंमें चतुर्मास्यका जो

लौकिक और स्वर्गीय माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसका तात्पर्य विषय भोगोंमें आसक्त कर्मियों और मोक्षसुखमें आवद्ध ज्ञानियोंको उन फलोंका लोभ दिखलाकर उन्हें भक्ति मार्गमें प्रवेश करानेके लिये है; जैसे किसी रोगी-बालकको मिठाईका लोभ दिखलाकर दबा दी जाय। अतएव शुद्ध कृष्णसेवाकी प्राप्ति ही चातुर्मास्य ब्रतका प्रधान और अन्तिम उद्देश्य है।

—त्रिदण्डसामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

जगद्गुरु श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्रीश्रीरथयात्राका आद्वान

आद्रणीय महोदय !

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य-कुलतिळक ॐविष्णुपादश्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोदठाकुरके तिरोभाव और श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रा के सप्तशताब्दीमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शास्त्र मठ-श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चिनसुरामें आगामी २ अषाढ़, १७ जून मंगलवारसे लेकर १३ अषाढ़, २८ जून, शनिवार १२ दिनों तक ध्वनि, कीर्तन, नगर-संकीर्तन, भाषण, महाप्रसाद वितरण आदि भक्तिके विविध चर्चाओंका विशाट अनुष्ठान होने जारहा है।

धर्म-प्राण सद्बन्धोंसे प्रार्थना है कि वे इस अवसर पर उक्त स्थान पर अधिकसे अधिक संलग्नमें उपस्थित होकर समितिके सदस्योंको परमानन्दित और उत्साहित करेंगे। दैनिक योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, तुद्धि और बाणीसे समितिके सेवा कार्योंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करके भी अनुगृहीत करेंगे।

शुद्ध-भक्त हृषीकेश-प्रार्थी —

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

प्रचार-प्रसंग

आसाम प्रदेशमें श्रीश्री आचार्यदेव

आसाम देशीय वैष्णवोंके विशेष आह्वान पर “परमहंस परिब्राजकाचार्यवर्य १००८ श्रीश्रीमद् भक्ति-ज्ञान केशव गोस्वामी महाराज” आजकल श्रीगोलोक-गंगा गौड़ीय मठमें पधारे हैं। उनके साथ समितिके प्रख्यात प्रचारक त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज तथा श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी, श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी ‘भक्ति-रंजन’, श्रीनिमाईदास ब्रह्मचारी, श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी, श्रीभागवत दासाधिकारी, श्रीअद्वैता दसाधिकारी और श्रीनिवास दासाधिकारी आदि दस व्यक्ति हैं। विराट-विराट सभाओं का आयोजन किया जाता है। दूर-दूरकी जनता हजारों-हजारोंकी संख्यामें आचार्यदेवके भाषणोंको सुननेके लिये एकत्रित होती है। श्रीगोलोकगंगा, गौड़ीय-मठको केन्द्रकर आचार्यदेव भिन्न-भिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्यदेवकी अप्राकृत वाणी और प्रेम-धर्मका प्रबल प्रचार कर रहे हैं।

प्रचारकार्यमें श्रीमती सुचित्रादेवी, श्रीयुत दिव्यज्ञान दासाधिकारी, श्रीयुत रमापति दासाधिकारी, श्रीयुत अद्वैतदास (धुबडी), श्रीयुत बनविहारी-दासाधिकारी और श्रीयुत निलाम्बरदास (विळनदई) आदि सज्जनोंकी सहानुभूति और सहायता उल्लेख योग्य और प्रशंसनीय है। ये सज्जनवृन्द हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

—प्रकाशक

श्रीनिमानन्द प्रभुका आर्चिभाव उत्सव

गत २३ वैशाख ६ मई, मंगलवारको आसाम देशीय गौड़ीय वैष्णव श्रीश्रीमन् निमानन्द ‘सेवातीर्थ’ प्रभुका आर्चिभाव-उत्सव सुबूत धूम-धामसे मनाया गया है, श्रीमती सुचित्रादेवीके गोलोकगंगामें स्थित वास-मवनमें, उन्हींके अर्थानुकूल से यह उत्सव सुमन्पन्न हुआ है। सबेरे श्रीसेवातीर्थ प्रभुके रचित पदोंके कीर्तनके पश्चात् १० बजे दिनमें श्रीनिमानन्द प्रभु, श्रीलंगुष्ठाद और श्रीआचार्यदेवके श्रीआलेख्य सिद्धासनके ऊपर विधिके अनुसार पधराये गये। श्रीश्रीआचार्यदेवने स्वयं सबसे पहले प्रभुके चरणोंमें और पश्चात् श्रीनिमानन्द प्रभुको अञ्जलि प्रदान किये। तत्पश्चात् श्रीरमापति प्रभु और श्रीमती सुचित्रादेवीने अपने गुरुगुरुदपद्मके चरणोंमें अञ्जलि देकर क्रमशः परम-गुरुदेव और श्रीआचार्यदेवके चरणोंमें अञ्जलि प्रदान किये। उनके बाद दूसरे दूसरे वैष्णवोंने शास्त्र विधिके अनुसार क्रमानुसार श्रीगुरुदेव, परमगुरुदेव और वैष्णव-चरणोंमें अञ्जलि प्रदान किये। पश्चात् उपस्थित भद्रत-मण्डलीको महाप्रसाद वितरण किया गया।

शामको श्रीआचार्यदेवके सभापतित्वमें एक विराट सभाका आयोजन किया गया। श्रीयुत रमापति दासाधिकारीने गुहतत्वके सम्बन्धमें भाषण दिये। पश्चात् आचार्यदेवने अपने दीक्षांत भाषणमें श्रीनिमानन्द प्रभुकी शिक्षा और उनके गृहस्थ जीवन के अतिमर्त्य चरित्र पर सुन्दर और तथ्यपूर्ण प्रकाश ढाला। इसके बाद कीर्तन होकर सभा भङ्ग हो गयी।

—श्रीदिव्यज्ञान दासाधिकारी, गोलोकगंगा (आसाम)

जैव-धर्म

सोलहवाँ अध्याय

प्रमेयके अन्तर्गत माया कवलित जीव-तत्त्वका विवेचन

ब्रजनाथ जीव-तत्त्वके सम्बन्धमें दशमूलका उप-देश अवणु कर घर लौटे। आज उन्हें नीद नहीं आ रही थी। वे विस्तरे पर लेटे-लेटे गम्भीरतासे विचार करने लगे कि, 'मैं कौन हूँ? इस प्रश्नका जो उत्तर मैंने पाया है उससे मैं जान पाया हूँ कि मैं श्रीकृष्ण रूप चित् सूर्यकी किरणगत एक कणमात्र हूँ। अगु होने पर भी मुझमें अस्मदर्थ, ज्ञानगुण और एक विन्दु चिदंगत आनन्द है। मेरा चित्कणसे बना हुआ एक स्वरूप है। अत्यन्त अगु होने पर भी वह स्वरूप श्रीकृष्णके मध्यमाकार स्वरूपके अनुरूप है। इस समय मुझे वह स्वरूप प्रतीत नहीं हो रहा है—यही मेरा दुर्भाग्य है। वहे भाग्यसे उस स्वरूपकी प्रतीति होती है। हमारा ऐसा दुर्भाग्य क्यों हुआ—इसे अच्छी तरहसे जाननेकी आवश्यकता है। मैं कल इस विषय में श्रीगुरुदेवसे जिज्ञासा करूँगा।'—ऐसा सोचते-सोचते लगभग आधी रातके समय उनको कहीं नीद आयी। शोष रातमें उन्होंने स्वप्र देखा कि वे संसार को छोड़ कर वैद्युत-वेश ले लिये हैं। जगने पर सोचा कि मालूम होता है, प्रभु संसारसे मुझे जल्दी ही बाहर निकालेंगे।

प्रातःकाल बरामदेमें थैठे हैं। उसी समय कुछ विद्यार्थी उनके पास आये और उनके चरणोंमें प्रणाम कर कहने लगे—'आपने हमें बहुत दिनों तक सूख अच्छी तरह पढ़ाया है। आपके निकट हमने न्याय-सम्बन्धी तरह-तरहकी गूढ़ शिक्षाएँ प्राप्त की हैं। अब हमारी आशा है कि आप हमें 'न्याय-कुसुमाञ्जलि' भी पढ़ायेंगे।'

ब्रजनाथने बड़ी ही नम्रतासे उत्तर दिया—'माई!

अब मुझसे अध्यापनाका कार्य नहीं होता। मेरा मन उधर बिलकुल ही नहीं लग रहा है। मैंने कोई दूसरा मार्ग अपनानेको सोचा है। ऐसी दशामें आप लोग किसी दूसरे अध्यापकके पास जाकर पढ़ें।'

विद्यार्थियोंको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। किन्तु वे कर ही क्या सकते थे। आखिर वे धीरे-धीरे बड़ों से उठकर चलने लगे। इसी समय श्रीचतुर्भूज मिश्र घटक उनके घर आये और ब्रजनाथकी पितामहीके निकट ब्रजनाथके विवाहके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव उपस्थित किये—विजयनाथ भट्टाचार्यको तो आप जानती हैं न। कुलीन वंश है, अवस्था अच्छी है, आपलोगोंके उपयुक्त घर है। और सबसे बड़ी बात यह है कि कन्या जैसी सुन्दरी है, वैसी सुशीला भी है। भट्टाचार्य, ब्रजनाथसे अपनी कन्याकी शादी करने में अपनी तरहसे कोई शर्त नहीं रखेंगे। आप जैसा चाहेंगी उसी रूपमें वे कन्या देनेके लिये प्रस्तुत हैं।'

ब्रजनाथकी पितामही विवाहके प्रस्तावसे बड़ी आनन्दित हुई। किन्तु ब्रजनाथ मन ही मन बड़े असन्तुष्ट हुए—'कहाँ तो मैं घरबार छोड़नेकी बात सोच रहा हूँ, क्या इस समय विवाहकी बातें अच्छी लगती हैं?'

विवाहकी बातको लेकर घरमें काफी तक्षितक चलने लगा। एक तरफ ब्रजनाथकी माँ, पितामही और दूसरी-दूसरी कुन-बृद्धाएँ और दूसरी तरफ अकेले ब्रजनाथ। ब्रजनाथ किसी प्रकार भी विवाह करनेके लिये राजी नहीं हो रहे थे और बृद्धाएँ विवाहके लिये ब्रजनाथ पर तरह-तरहसे दबाव डाल रही थी। दिन भर यही चर्चा होती रही। इधर शामसे जो वर्षा

आरंभ हुई, सारी रात थमनेका नाम ही नहीं लिया। इसलिये उस दिन ब्रजनाथका मायापुर जाना न हो सका। दूसरे दिन विवाहकी बातको लेकर काफी गरमा-गरमी हो जानेके कारण ब्रजनाथका खाना-पीना भी अच्छी तरहसे न हो सका। शाम होते ही वे बृद्ध बाबाजीकी कुटिया पर पहुंचे और बाबाजी महाशयको दण्डवत्-प्रणाम कर उनके समीप बैठे।

बाबाजीने कहा—‘कल रातमें बड़ी वर्षा हो रही थी। इसलिये आ नहीं सके। आज तुम्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।’

ब्रजनाथ—‘प्रभो ! मेरे ऊपर कुछ सङ्कट आ पड़े हैं। खैर; उस विषयमें आपको पीछे बतलाऊँगा। अभी तो मुझे यह बतलानेकी कृपा करें कि जीव जब शुद्ध चित् पदार्थ है, तब उसकी संसार रूप दुर्गति क्यों होती है ?’

बाबाजी स्मितहास्यके साथ कहने लगे—

स्वरूपायैर्हीनाम् निज-सुखपरान् कृष्ण-विमुखान्
हरेमर्या दशह्याम् गुण-निगद-जालैः कलयति ।
तथा दधूलैङ्गिङ्गैर्हिंविद्यावरणैः बलेश निकरै—
महा-कमलामैर्यति पतितान् स्वर्गं-निर्यतौ ॥

(ब्रह्मा दशमूल)

—जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्य दास है। कृष्ण-दास्य ही उसका स्वरूप-धर्म है। उस स्वरूप-धर्मसे रहित, निज सुखपर और कृष्ण-विमुख जीवोंको दण्ड देनेके लिये भगवानकी माया-शक्ति उन्हें सत्त्व, रज और तमोगुण रूप जीवरसे बांध देती है और स्थूल तथा लिङ्ग शरीरोंसे जीव-स्वरूपको आच्छादित कर तथा दुखपूर्ण कर्म-बन्धनमें डाल कर स्वर्ग और नरक में उन्हें सुख और दुखको भोगाती किरती है।

गोलोक वृन्दावनमें वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी सेवाके लिये श्रीबलदेव प्रभु द्वारा और परब्रह्म—बैंकुठमें वैकुंठाधिपतिनारायणकी सेवाके लिये श्रीस-कृष्ण द्वारा प्रकटित नित्य-पार्षद जीव आनंद हैं। वे

नित्य-काल तक उपास्यकी सेवामें रसिक होते हैं, सर्वदा स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उपास्यको सुखी रखनेमें सदा तप्त रहते हैं, उपास्यके प्रति सर्वदा उन्मुख रहते हैं, चित्-शक्तिका बल प्राप्त कर सदा बलवान् होते हैं। उनका जड़ा मायाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे लोग यह भी नहीं जानते हैं कि माया नामक कोई शक्ति भी है या नहीं। क्योंकि वे चिन्मणदलमें चास करते हैं। माया उनसे बहुत ही दूर होती है। वे सब समय उपास्यके सेवा-सुखमें निमग्न रहते हैं। वे जड़ दुःख-सुख से असीत होते हैं। तथा नित्य मुक्त होते हैं। प्रेम ही उनका जीवन होता है; शोक, मरण और भय—यह सब क्या चीज है—उन्हें इसकी तनिक भी खबर नहीं होती।

कारणादिवशायी महाविष्णुके मायाके प्रति इक्षण-रूप किरणगत अगुचैतन्य जीव भी अनन्त हैं। मायाके बगलमें स्थित होनेके कारण जीव मायाकी चिचित्रताको देखते हैं। साधारण जीवोंके समस्त लक्षण जो पहले बतलाये गये हैं—इनमें पाये तो जाते हैं, तथापि इनका स्वभाव अत्यन्त अगु—जुद्र होनेके कारण वे तटस्थ भावसे कभी चित् जगत्की ओर और कभी मायिक जगत्की ओर हटिपात करते हैं। तटस्थ-वस्थामें जीव बहुत ही दुर्बल होता है। क्योंकि उस समय तक वह सेव्य वस्तुकी कृपा लाभकर चिदूबल प्राप्त नहीं किया होता है। इन अनन्त जीवोंमें से जो जीव मायाको भोग करना चाहते हैं, वे विषयोंमें आसक्त होकर मायाद्वारा नित्य बद्ध हो पड़ते हैं और जो जीव सेव्य वस्तुका चिदू अनुशीलन करते हैं, वे सेव्यतत्त्वकी कृपासे चित्-शक्तिका बल पाकर चिदू-ममें गमन करते हैं। बाबा ! हमारा बड़ा दुर्भाग्य है कि हमलोग कृष्णकी सेवा भूलकर मायाके वंचनमें जड़े हुए हैं। अतएव स्वरूपार्थ से रहित होनेके कारण ही हमारी यह दुर्दशा है।

(क्रमशः)